सूर्य चिकित्सा
2327

सूर्य चिकित्सा

[सूर्य की किरणों और उनके द्वारा उपलब्ध सिद्ध साधनों से चिकित्सा सम्बन्धी श्रेष्ठ पुस्तक]

सम्पादक :

डा० चमनलाल गौतम

रचयिता—मन्त्र महाविज्ञान, तन्त्र महाविज्ञान, उपासना महाविज्ञान, मन्त्रयोग, वैदिक मन्त्र विद्या, ओंकार सिद्धि आदि ।

प्रकाशक :

संस्कृति संस्थान

[illegible]ा कुतुब, वेदनगर, बरेली-२४३००१ (उ.प्र.)

प्रकाशक:
डा. चमनलाल गौतम
संस्कृति संस्थान
ख्वाजा कुतुब, वेदनगर
बरेली—२४३००१ (उ. प्र)

लेखक :
कविराज दाऊदयाल गुप्त
रजिस्टर्ड मेडीकल प्रेक्टिशनर
मथुरा ।

प्रथम बार
१९७५

मुद्रक :
शैलेन्द्र बी. माहेश्वरी
नवज्योति प्रेस,
भीकचन्द मार्ग, मथुरा ।

मूल्य : दो रुपये पचहत्तर पैसे मात्र

दो शब्द

सूर्य की किरणों में जीवनी शक्ति की प्रचुरता होने के कारण इसकी अपेक्षा भी जल और वायु की अपेक्षा से किसी प्रकार कम नहीं है। प्रत्यक्ष देखा जाता है कि जिस घर में धूप नहीं आती, उसमें सील रहती है, जिसके कारण रोग के कीटाणु पनपते रहते हैं। जबकि खुले वातावरण वाले धूप एवं प्रकाश युक्त घर में रोग-कीटाणुओं का अभाव रहता है।

शरीर पर धूप का जो प्रभाव पड़ता है, उसके कारण मनुष्य की माँसपेशियों में लचीलापन और सुदृढ़ता बनी रहती है तथा बहुत से रोग तो उत्पन्न ही नहीं हो पाते और जो रोग उत्पन्न हो जाते हैं, वे सूर्य की किरणों के विधिवत उपयोग से स्वाभाविक रूप से नष्ट हो जाते हैं। इसीलिए हमारे प्रचीन आचार्यों ने सूर्य के गुणों को जन-साधारण के समक्ष प्रस्तुत कर उसे एक चिकित्सा पद्धति का ही रूप दे दिया था।

पाश्चात्य विद्वानों ने भी इस पद्धति में नवीन प्रयोग किये और इसे 'क्रोमोपैथी' नाम दिया। अन्य पद्धतियों के समान अब इसका प्रयोग भी बहुतायत से होने लगा है परन्तु इस प्रकार की पुस्तकों की कमी होने के कारण लाभ उठाना कठिन है। इसलिए इसकी बढ़ती हुई माँग को देख कर हमने अपने विषय की इस सर्वाङ्ग पूर्ण पुस्तक को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। हमें विश्वास है कि मानव जाति का इसके द्वारा बहुत कुछ हित-साधन हो सकता है।

—प्रकाशक

विषय सूची

सूर्य चिकित्सा

सूर्य में रोग निवारणी शक्ति

सूर्य में रोग-निवारिणी शक्ति के होने का तथ्य सर्वप्रथम हमारे आचार्यों ने ही अनुभव किया। उनके मत में सूर्य की किरणें हमारे शरीर के जिस भाग पर पड़ती हैं, उसे रोग ग्रस्त नहीं होने देतीं ; अथवा रोगी मनुष्य यदि सूर्य की किरणों को अपने शरीर पर ग्रहण करे तो उसके रोग की निवृत्ति सम्भव होती है। इसीलिए श्रुति का कथन है—'भोऽसौ तपन्नुदेति सर्वेषां भूतानां प्राणानादायोत्' अर्थात् 'यह सूर्य सभी प्राणियों के प्राणों का स्रोत है। प्रश्नोपनिषद् में भी कहा है—'स एष वैश्वानरो विश्वरूपं प्राणोऽग्निरुदये' अर्थात् 'जब यह सूर्य उदय होता है, तब सम्पूर्ण संसार में प्राणाग्नि का संचार आरम्भ हो जाता है। ऋग्वेद का मत है—

उद्वयं तमसस्परि ज्योतिष्पश्यन्त उत्तरम्।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥
उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम्।
हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय ॥
शुकेषु मे हरिमाणं रोपणाकासु दध्मसि।
अथो हारिद्रवेषु मे हरिमाणं निदध्मसि ॥
उदगादयमादित्यो विश्वेन सहसा सह।
द्विषन्तं मह्यं रन्धयन्मो अहं द्विषते रधम् ॥

ऋक् १।५०।१०।१३

अर्थात्—गहन अन्धकार (रूप चादर) पर अपने विस्तृत प्रकाश को फैलाते हुए देवताओं में श्रेष्ठ सूर्य हमें प्राप्त हों। हे मित्रों के मित्र सूर्य ! तुम उदय होकर जब आकाश में उठो, तब मेरे हृदय रोग और पीतवर्ण को नष्ट कर दो। हे सूर्य ! मैं अपने उस पीतवर्ण को शुक-सारिकाओं में स्थापित करता हूँ। यह सूर्य अपने पूर्ण तेज से सब रोगों के नाश क निमित्त उदित हुए हैं। मैं उन रोगों के वश में न पड़ सकूँ।

ऋग्वेद के उक्त उद्धरण से यह स्पष्ट है कि सूर्य की किरणों में सभी रोगों को नष्ट करने की शक्ति है। हृदय रोग और शरीर की पाण्डुवर्णता दूर होना तो एक सामान्य बात है। उनके द्वारा जिस प्रकार रोगों का नष्ट होना सम्भव है, उसी प्रकार किरणों की विष नाशक शक्ति पर भी वेदों ने अनेक स्थानों पर प्रकाश डाला है, जिसका उद्धरण यहाँ अभीष्ट नहीं है।

महाभारत में भी सूर्य के रोग-नाशक गुणों का वर्णन करते हुए बताया गया है कि भगवान् कृष्ण के पुत्र साम्ब को कोई रोग उत्पन्न हुआ था, वह सूर्य-चिकित्सा के द्वारा ही ठीक हो सका था। विभिन्न पुराण भी सूर्य की रोग-नाशक शक्ति को स्वीकार करते हुए सूर्य का उदय होना प्राणि मात्र के लिए उपयोगी मानते हैं।

आधुनिक विद्वानों की खोजें

उक्त मान्यता हमारे प्राचीन ऋषियों की ही रही हो, ऐसा नहीं है। आधुनिक विद्वानों ने भी इस विषय में बहुत खोजें की हैं और पाश्चात्य विद्वान् भी सूर्य से रोगों का नाश होना स्वीकार करते हैं। क्योंकि उन्होंने अपने परीक्षणों में पाया कि सूर्य की किरणें मनुष्य को स्वस्थ्य रखने में बहुत सहायक हैं। कोई किसी भी रोग से पीड़ित क्यों न हो, उस रोग से छुटकारा दिलाने में भी इसका अत्यन्त उपयोग है।

ऐसा कुछ अनुभव होने पर उन वैज्ञानिकों ने धूप से लाभ उठाने के उद्देश्य से एक व्यवस्थित चिकित्सा-पद्धति की कल्पना की और तब

धीरे-धीरे अनेकों सूर्य-रश्मि-चिकित्सा केन्द्र उधर खुल गये। उसके बाद तो वहाँ इस चिकित्सा-पद्धति से सम्बन्धित बहुत-सा साहित्य लिखा गया। आज भी इस विषय पर अनेक खोजें हो रही हैं और उनसे होने वाले अनुभवों को लिपिबद्ध किया जा रहा है।

वैज्ञानिकों ने अपने-अपने अनुभवों के आधार पर स्पष्ट घोषणा की कि सूर्य सभी रोगों की श्रेष्ठ दवा है। इससे जुकाम, खाँसी, निमोनिया, क्षय, कुष्ठ एवं अन्यान्य चर्म रोग तथा वातजन्य रोग दूर हो सकते हैं। इसके लिए गार्डनर रोनी सूर्य-स्नान करने का परामर्श देते रहते हैं। सूर्य-चिकित्सा के पुनः प्रवर्तक डा० हैस के मत में 'खाने के सभी पदार्थ सूर्य से ही उत्पन्न होते हैं। यह रोगों की अचूक दवा है। यदि इसकी महत्ता को जन-साधारण जान लें तो सदा स्वस्थ रह सकते हैं।

सूर्य और हृदय का गहरा सम्बन्ध

सूर्य और हृदय का कितना गहरा सम्बन्ध है, इस पर हमारे सर्व द्रष्टा महर्षियों ने ही प्रकाश नहीं डाला, वरन् विदेशी विद्वानों ने भी उन्हीं के मत को सम्पुष्ट मात्र किया है। फ्रांस के एक प्रसिद्ध हृद्रोग विशेषज्ञ डा० मार्सेल पोमेलोक्स ने अपने एक निबन्ध में कहा कि 'जब सौर मण्डल में तूफान आये होते हैं, तब हृद्रोग के दौरे अधिक पड़ते हैं। तूफानों से पहिले पड़ने वाले दौरों की संख्या तूफानों के पश्चात् चौगुनी हो जाती है।

डा० सोबी नामक एक विशेषज्ञ के मत में सूर्य रश्मियाँ केवल बाह्य चर्म पर ही अपना प्रभाव नहीं डालतीं, वरन् वे शरीर के भीतर बहुत गहराई तक घुसकर रक्त को प्रभावित कर देती हैं। उसके फलस्वरूप शरीर का सम्पूर्ण तन्तुजाल और जीव कोषाणु असाधारण शक्ति को प्राप्त होकर शरीर के निर्माण कार्य को उचित रीति से संचालित करने में समर्थ रहते हैं। इस प्रकार शरीर में रोगों से संघर्ष करने की शक्ति बढ़ने लगती है।

एक वैज्ञानिक डा० हानेग के अनुसार रक्त का पीलापन, पतलापन, रक्ताल्पता, लोहाल्पता, नसों की निर्बलता आदि रोगों में सूर्य किरणों की सहायता से चिकित्सा करना बेजोड़ पाया गया है। मियो अस्पताल के सिविल सर्जन एफ ग्रिवेल्ड ने अपने धूप सम्बन्धी अनुभवों पर प्रकाश डालते हुए कहा था कि 'यदि धूप का प्रयोग ठीक प्रकार से किया जा सके तो स्वास्थ्य में स्थिरता लायी जा सकती है। यदि किसी प्रकार का रोग हो जाय तो उसे भी धूप के द्वारा ठीक किया जा सकता है।'

सुविख्यात डाक्टर न्योची के मतानुसार 'संसार में जब तक सूर्य की विद्यमानता है, तब तक लोग दवाओं की खोज में व्यर्थ ही भटकते हैं, उन्हें शक्ति, सौन्दर्य और स्वास्थ्य के केन्द्र सूर्य की ओर देखना तथा उसकी सहायता से अपने स्वास्थ्य का निखार करना चाहिए।

हमारे शास्त्रों ने सूर्य या अग्नि को अन्न रूप में स्वीकार किया है। वे सूर्य को प्राण मानते हैं और प्राण को अन्न। क्योंकि सूर्य के बिना अन्न और प्राण कुछ भी नहीं हो सकता। वैसे भी, अन्न नहीं तो प्राण ही कहाँ से होगा? इस प्रकार सूर्य, प्राण और अन्न तीनों का परस्पर तादात्म्य सम्बन्ध तो है ही।

और इस सम्बन्ध को विदेशी विद्वान् भी स्वीकार करने लगे हैं। जो लोग प्राचीन आचार्यों के निर्देशों पर विश्वास नहीं करते, वे वाशिंगटन के डा० जे० एच० केलाग की पुस्तक The New Dietetices पर एक नजर डालने का कष्ट करें, जिसमें उन्होंने व्यक्त किया है कि वस्तुत: खाद्य पदार्थ अन्य कुछ नहीं, वरन् केवल शीतल रूप में रक्षित सूर्य रश्मियां ही हैं।

इससे सिद्ध हुआ कि सूर्य की किरणें, चाहे जिस वस्तु पर पड़े, वह वस्तु उनसे प्रभावित हुए बिना न रहेगी। विद्वानों के मत में कड़ी धूप में पाषाण भी पिघलने लगते हैं और अधिक शीत के कारण जमी

हुई बरफ तो जल का रूप धारण करने ही लगती है। जिस पर शीत जलीय वस्तु को भी जमा देती है, वैसे ही धूप उस जलीय वस्तु के जलांश को सुखाकर जमाने में समर्थ होती है। आप किसी वस्तु के रस को आग पर चढ़ाकर ओंटाते जाइये तो वह रस धीरे-धीरे घन का रूप धारण करता हुआ, अन्त में ऐसा जम जायगा कि उसे बिना प्रयत्न के तोड़ा भी नहीं जा सकता।

फ़ूल-पौधों पर पड़ने वाले प्रभाव के विषय में डा० ई० एम० राक और जार्ज एफ स्टीवर्ड ने अपनी पुस्तक 'एडवान्सेज इन फूड रिसर्च' में लिखा कि 'पत्तियों के द्वारा ढके हुए फलों की अपेक्षा, धूप में रहने वाले फलों को पकने का अधिक सुयोग रहता है तथा उनमें विटामिन 'सी' का भी अधिक प्रयोग उत्पन्न होना पाया जाता है।

विटामिन 'डी' का भण्डार

और सूर्य विटामिन 'डी' का तो भण्डार ही है। जितना विटामिन 'डी' सूर्य की किरणों में मिलेगा, उतना कहीं अन्यत्र नहीं मिल सकता। वाशिंगटन के कृषि विभाग द्वारा प्रकाशित एक पुस्तक 'फूड एण्ड लाइफ' में स्पष्ट बताया गया है कि 'हमारे शरीर को स्वस्थ्य रखने में जितना विटामिन 'डी' आवश्यक होता है, उसका पूरा अथवा अधिक भाग सूर्य से प्राप्त किया जा सकता है।

मनुष्य के नग्न शरीर पर यदि सूर्य की किरणों को निश्चित प्रकार से ग्रहण करने का अभ्यास डालें तो विटामिन 'डी' की कमी कमी ही नहीं पड़ सकती। चमड़े के बाह्य भाग पर रहने वाले रासायनिक पदार्थ का सहयोग इस विटामिन की उत्पत्ति में सहायक होता है। इसलिए नग्न स्थिति में धूप-स्नान करना अधिक लाभप्रद समझा जाता है। 'ब्रिटिश एन्साक्लोपीडिया आफ मेडिकल प्रेक्टिस' में भी इस तथ्य की पुष्टि होती है।

सूर्य की इसी शक्ति को देखकर अनेक विद्वान् सूर्य और उसकी धूप

को विटामिन 'डी' का खजाना ही कहते हैं। विटामिन 'डी' की कमी से शरीर में अनेक संक्रामक रोग, माँस पेशियो में दौर्बल्य, स्नायु-दौर्बल्य की सम्प्राप्ति हो जाती है तथा क्षयादि रोगों का प्रतिरोध करने की शक्ति भी कम होती जाती है। अनेक वार इस विटामिन के अभाव में अस्थियों में विकार, राजयक्ष्मा, दन्तवेष्ट रोग या पाइरिया आदि होते देखे जाते हैं।

वैसे, विटामिन 'डी' दूध आदि अन्य वस्तुओं से भी प्राप्त किया जा सकता है। परन्तु, धूप के समान सुलभ और व्यय-रहित साधन अन्य कोई भी नहीं है। इससे यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि धूप हमारे शरीर के लिए कितनी अधिक उपयोगी वस्तु है।

और फिर दूध आदि में विटामिन 'डी' की प्राप्ति पूर्ण परिमाण में हो ही सके, ऐसे विश्वास का भी तो कोई आधार नहीं है। क्योंकि दूध देने वाली जो गाय, भैंस, बकरी धूप में घूमती हुई घास आदि खाती हैं, उनके दूध में विटामिन 'डी' अधिक होता है, जबकि धूप में बंधी रहने वाली गाय आदि के दूध में इस विटामिन का नितान्त अभाव रहता है। उसका कारण स्पष्ट है कि धूप में उगी हुई घास भी इस विटामिन से युक्त होती है और उस गाय आदि पशु पर जो धूप पड़ती है, वह उसमें इस विटामिन को उत्पन्न करती रहती है। इस प्रकार उसके दूध में विटामिन 'डी' की मात्रा अधिकाधिक बढ़ जाती है।

सूर्य की किरणें शरीर में गहराई तक पहुँच कर सभी तन्तुओं और कोषों को शक्तिशाली बनाने में सहायक होती हैं। किरणों के प्रभाव से रक्त में लाल और सफेद कणों की संख्या बढ़ने लगती है, जिससे नस-नाड़ियों में सबलता और स्फूर्ति आ जाती है।

किरणों का प्रभाव रोगोत्पादक कीटाणुओं को नष्ट करने में पूर्ण समर्थ है। उसके फलस्वरूप शरीर की रोग-प्रतिरोधक शक्ति बढ जाती है और कोई भी रोग सहज ही उस मनुष्य को आक्रान्त नहीं कर पाता। स्नायु-जाल पर तो इन किरणों का ऐसा प्रभाव पड़ता है कि चाहे जैसा

निर्बल मनुष्य हो, उसमें नवीन स्फूर्ति और अभूतपूर्व शक्ति का संचार होने लगता है।

शरीर में प्रविष्ट हुई यह किरणें रक्त को अनुकूल दिशा में प्रवाहित करती हैं। रुका हुआ रक्त-संचार नियमित रूप से चालू हो जाता है, जिसके फलस्वरूप हृदय और फुफ्फुसों की क्रिया स्वाभाविक हो जाती है। निम्न रक्तचाप (लो ब्लड प्रेशर) की तो यह अमूल्य औषधि ही हैं।

इन किरणों के प्रभाव से रक्त की गति में तीव्रता आने लगती है। खून गर्म हो जाता है, जिससे उसमें विद्यमान 'अर्गोसटेरोल' नामक पदार्थ सूर्य की किरणों का स्पर्श पाकर विटामिन 'डी' के रूप में बदल जाता है। यह विटामिन ही आँतों में अम्ल और क्षार की मात्रा को उचित रूप में व्यवस्थित रखती है। यही क्रिया खाये हुए अन्न से फास्फोरस और कैलशियम को उपलब्ध करने में सहायक है।

जो लोग नियमित रूप से धूप सेवन करते हैं, उनकी पाचन शक्ति ठीक रहती है और शरीर स्वस्थ, सुन्दर, सुगठित बना रहता है। इसके विपरीत, जिन्हें धूप में रहने के अवसर नहीं मिलता, वे लोग प्रायः पाचन क्रिया की गड़बड़ी के शिकार बने रह कर, मन्दाग्नि आदि विकारों से पीड़ित रहे आते हैं। उन्हें आये दिन चिकित्सकों की शरण लेनी होती है।

डा० सोले के अनुभवानुसार 'कैंसर, नासूर, भगन्दर प्रभृति जो रोग विद्युत् और रेडियम किरणों के प्रयोग से भी ठीक नहीं किए जा सके, वे सूर्य-किरणों के ठीक प्रकार से प्रयोग करने पर समूल नष्ट हो गये।' इससे सिद्ध होता है कि सूर्य की किरणों के द्वारा भयंकर से भयंकर रोग भी दूर किये जा सकते हैं।

राजयक्ष्मा के विशेषज्ञ डा० हरनिच ने अपने तीस वर्ष के चिकित्सा काल में लगभग बाईस हजार रोगियों की चिकित्सा विभिन्न औषधि-प्रयोगों द्वारा की, परन्तु उन्हें उनसे पूर्ण सन्तोष प्राप्त नहीं हो सका।

उसका कथन है कि उसके बाद विगत तीन वर्षों से मैं क्रोमोपैथी सूर्य-
चिकित्सा पद्धति) का प्रयोग अपने रोगियों पर कर रहा हूं। उसके फल-स्वरूप मैं यह कह सकता हूँ कि क्षय रोगी के लिए सूर्य शक्ति से अधिक कोई अन्य औषधि नहीं है।

हमारे ऋषिगण सूर्य किरणों के इन महान् गुणों का लाखों वर्ष पहिले ही अनुभव कर चुके थे। यह बात दूसरी है कि उन्हें उपयोग में लाने का उनका ढंग दूसरा था। परन्तु, उसमें लौकिक हित के साथ पारमार्थिक हित का भी समावेश रहने के कारण साधारण मनुष्य उसे कर्मकाण्ड या पूजा-पाठ का ही अंग मानकर उस पर ध्यान नहीं देते थे।

परन्तु हमें यह विश्वास कर लेना चाहिए कि हमारे ऋषि-मुनियों द्वारा निश्चित की हुई वह विधि, आज की विधि से अधिक वैज्ञानिक है। उसमें उपासनाओं और मुद्राओं का समावेश करके उसे अधिक उपा-देय बना दिया गया था। उपासना में ध्यानादि की तन्मयता के कारण शरीरस्थ विकार में वैसे ही कमी आने लगती है, उस पर भी मुद्राओं का करना, एक श्रेष्ठ व्यायाम के लाभों को प्राप्त करता है। इस प्रकार यह दो लाभ तो ध्यानादि रूप उपासना से और मुद्राओं से हुए. तीसरा लाभ उस क्रिया को सूर्य नमस्कारादि के रूप में, सूर्य के सामने खड़े होने से धूप-सेवन का लाभ भी अनायास ही मिल गया। इससे जब त्रिगुणात्मक लाभ प्रत्यक्ष है, तब इसकी वैज्ञानिकता में भी क्या सन्देह हो सकता है?

सूर्योपासना का रोग-निवारक विधान

और सूर्योपासना का यह विधान भारतवर्ष में ही नहीं, अनेक पाश्चात्य देशों में भी प्रचलित था। कनाडा आदि देशों में भी इसके प्रचलन का प्रमाण वहाँ सूर्य-मन्दिरों के मिलने से स्पष्ट है। इसके अति-रिक्त अन्य अनेक देशों में भी ऐसे प्रमाण मिले हैं, जिनसे वहाँ कभी सूर्य की उपासना का प्रचलन होना सिद्ध होता है। परन्तु, उनके विषय में विस्तृत रूप से कहना अभीष्ट नहीं है।

हम नहीं कहते कि जो लोग सूर्योपासना को झंझट समझते हो, वे

भी इसे करें वरन् हम उन्हें परामर्श देंगे, वे जितना भी समय दे सकें, उतने समय तक केवल धूप-सेवन मात्र करलें तो, वे स्वस्थ, सुन्दर और निरोग बने रह सकते हैं।

परन्तु, रोग-निवृत्ति के लिए तो किसी न किसी पद्धति का सहारा लेना ही होगा। चाहे प्राचीन भारतीय विधि को अपनावें, अथवा नवीन विधि के द्वारा चिकित्सा में तत्पर हों। लाभ दोनों से ही हो सकता है, चाहे वह न्यून हो अथवा अधिक। इस पुस्तक में हम जहाँ नवीन पद्धति पर प्रकाश डालेंगे, वहां प्राचीन पद्धति के भी सरल प्रयोगों को प्रस्तुत करेंगे। ऐसा करने से पाठक अपनी मन-पसन्द पद्धति को अपना सकेंगे।

सूर्य में प्राणदायिनी शक्ति है, इसे कोई अमान्य नहीं कर सकता। प्राचीन और अर्वाचीन, सभी विद्वान् उसकी अमोघ शक्ति को स्वीकार करते हैं। वेद, शास्त्र, पुराण, इतिहास ज्योतिष आदि अपने-अपने ढंग पर उसकी महिमा को व्यक्त करते रहे हैं। पाश्चात्य विद्वान् भी उसे अस्वीकार न कर सके। डा० चार्ल्स एफा हैनेल के मत में 'संसार में विकसित होने वाली सभी प्रकार की शक्तियाँ सूर्य के कारण ही विकास को प्राप्त होती हैं। कोयले और लकड़ी की ज्वलन शक्ति, जीव-जन्तुओं का विकसित होना, जल और वायु का प्रभावित होना, यह सभी कुछ पृथिवी पर सूर्य-शक्ति के प्रभाव के ही विभिन्न रूप मानने चाहिए।

सूर्य-किरणों में सात रंगों का समावेश

सूर्य किरणों में सात रंगों का समावेश है, यह तथ्य किरणों की ओर ध्यान से देखने पर स्पष्ट प्रतीत होता है। उनमें जो रंग-बिरंगी झलक रहती है, वह कोई विशेष रहस्य का विषय नहीं है। यदि सूर्य के स्वभाविक रूप पर विचार करें तो इस विषय में ठीक जानकारी हो सकती है।

वैज्ञानिकों का मत है कि सूर्य-बिम्ब का वर्ण पारद के समान उज्वल है, उसी में इन सातों रंगों की विद्यमानता है । कुछ लोग शंका करते हैं कि उज्वल या श्वेत वर्ण में उससे विपरीत सात रङ्गों का होना कैसे सम्भव है ? तो उन्हें इस तथ्य को समझना चाहिए कि चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि और राहु, यह सातों ग्रह सूर्य के चारों ओर घूमते हुए सूर्य और पृथिवी के मध्य सम्पर्क बनाये रखते हैं ।

अब इन ग्रहों के वर्ण पर ध्यान दीजिये—चन्द्रमा का रङ्ग रजत के समान चमकता हुआ श्वेत होता है । मङ्गल का वर्ण तांबे के समान, बुध का रंग गहरा पीला, बृहस्पति का स्वर्णिम (सुनहला), शुक्र का नील मणि सदृश नीला, शनि का लौहवत् काला और राहु का वर्ण अन्धकार युक्त होता है । कुछ लोग आठवें ग्रह केतु को भी इसके साथ मानते हुए उसके वर्ण को अनियमित मानते हैं ।

कुछ विद्वानों के मत में राहु पृथिवी से अभिन्न है । उसका वर्ण अन्धकारात्मक होने के कारण पृथिवी पर रहने वाले जीवों को अन्य ग्रहों से प्रकाश प्राप्त करना आवश्यक होता है । इसलिए पृथिवी अपने अन्धकार को दूर करने के लिये सूर्य और चन्द्रमा से सम्बन्ध स्थापित किये हुए हैं. एक यह भी मान्यता है कि चंद्रमा भी सूर्य से ही प्रकाश प्राप्त करके प्रकाशित रहता है । इसलिए सूर्यास्त होने पर चन्द्रमा भी पृथिवी की प्रकाश-सम्बन्धी आवश्यकता की पूर्ति के लिए तत्पर रहता है । परन्तु, उसका प्रकाश सूर्य के समान तीव्र नहीं होता, इसीलिए उसमें शीतलता रहती है, जो कि जीवों को अपना स्पर्श प्रदान करती हुई उनकी थकान दूर करती है ।

उक्त सभी ग्रह जब सूर्य के चारों ओर घूमते हैं, तब उनकी किरणें अपने-अपने वर्ण को धारण किये हुए ही चारों ओर फैलती हैं । परन्तु, उनका वह रंग किसी एक स्थान पर स्थायी रूप से नहीं रहता । इसका कारण उन ग्रहों की गति में समानता का न होना है । कुछ लोगों का मत है कि सूर्य की किरणों को रंगों की प्राप्ति इन ग्रहों के प्रभाव से ही

होती हैं, जबकि कुछ के मत में यह ग्रह स्वयं भी सूर्य ही अपने-अपने रंग की अपेक्षा करते हैं। बात कुछ भी हो, हमारा अभीष्ट इस विवाद मे पड़ कर प्रसंग से हटना नहीं है। इसलिए प्रसंगानुसार ही विषय को समझाना उचित समझते हैं।

ग्रहों की किरणों का सूर्य किरण से मिलन

उन घूमते हुए ग्रहों की अपनी-अपनी किरणें तिरछी अथवा सीधी रह कर सूर्य की किरणों से जा मिलती हैं, तब उन-उन रंगों का प्राकट्य या वृद्धि होती है और ऐसा होने पर वे मिश्रित किरणें पृथिवी पर विद्यमान चराचर प्राणियों को प्रभावित करने में समर्थ होती हैं। जिसे जिस रंग की अधिक अपेक्षा होती है, उसे अधिक और कम अपेक्षा होती है, उसे अधिक रंग की पूर्ति उन्हीं किरणों से समुचित रूप में होती रहती है।

संसार के सभी रंग उन्हीं किरणों से उद्भूत हुए हैं। उन्हीं के प्रभाव से पृथिवी भी सात रंगों से युक्त रह कर सुचारु रूप से जीवों का पालन करती है। वनस्पतियों और औषधियों में देखिये तो उनमें उन सात रंगों की स्पष्ट रूप से स्थिति दिखाई देगी। किसी वृक्ष का पुष्प श्वेत है तो किसी का पीला, किसी का लाल तो किसी का गुलाबी, कोई फूल ताम्रवर्ण का है तो कोई आसमानी वर्ण का। अभिप्राय यह है कि जड़ी, बूटी, फल, फूल, पत्ते आदि भी विभिन्न रंग के पाये जाते हैं। उसका कारण किरणों के प्रभाव से पृथिवी का भी सप्तवर्णा हो जाना है।

फिर, वनस्पति, औषधि या फल-फूल में ही क्यों, पत्थरों में भी रंगों की विभिन्नता मिलती है। मणि, रत्न, सोना, चाँदी, ताँबा, शीशा, जस्ता, लोहा, अभ्रक आदि सभी वस्तुएं खानों से निकलती हैं, वे पृथिवी के विकार रूप ही हैं। उन सभी के रङ्गों में प्रत्यक्ष ही विभिन्नता पाई जाती है।

सूर्य से उत्पन्न हुई ऊर्जा का प्रभाव

मनुष्यों का वर्ण, चाहे मिलता जुलता भले ही हो, परन्तु सर्वथा समानता नहीं होती। कोई गोरा है तो कोई काला कोई साँवला तो कोई कम या अधिक गोरा। अधिक क्या, नाक-नक्श आदि में भी विभिन्नता का कारण सूर्य के प्रभाव से पृथिवी में उत्पन्न होने वाली ऊर्जा की ही न्यूनाधिकता है। उसी से कोई मनुष्य अत्यन्त पहलवान और कोई अत्यन्त दुर्बल शरीर का रहता है।

ज्योतिष शास्त्र उक्त ग्रहों की अनुकूलता प्राप्त कराने के उद्देश्य से विभिन्न विधियों का निर्धारण करता है। उन विधियों में भी जिन वस्तुओं का प्रयोग किया जाता है, वह विभिन्न वर्ण की होती हैं। हीरा, माणिक्य, नीलम, पुखराज, पन्ना आदि भिन्न भिन्न रंग वाले रत्नों का धारण भी उन-उन से सम्बन्धित ग्रहों का अनुकूल बनाने की दृष्टि से ही किया जाता है।

यह संसार सप्तात्मक है। उसकी प्रत्येक वस्तु सात-सात के भेद से विभाजित हुई है। जिस प्रकार किरणों में सात रंग हैं, उसी प्रकार पृथिवी पर रत्न भी सात रंग के उपलब्ध हैं। जैसे पृथिवी में सात धातु और सात ही उपधातु हैं, वैसे ही मानव शरीर में सात धातु और सात उपधातु होती हैं। शरीर की त्वचा भी सात और सात ही अग्नि की कलाएँ मानी गई हैं। इस प्रकार यह सम्पूर्ण जगत् सात-सात अंगों में बँट कर किरणों के सात रंगों की पुष्टि करता है।

मनुष्य का शरीर भी सप्तवर्णात्मक कहा जाता है। उसमें सात रंगों की विद्यमानता अपेक्षित रूप से होती है। किसी भी एक रंग की मात्रा में अपेक्षा से अधिक कमी होने पर शरीर रोगी हो जाता है और जब तक उस रंग की पूर्ति नहीं हो जाती, तब तक उसका स्वस्थ होना सम्भव नहीं होता।

शास्त्रों ने सूर्य को 'सप्तरश्मि' कह कर किरणों के सात प्रकारों को

स्पष्ट रूप से कह दिया है। महर्षियों ने सूर्य के रथ में सात अश्व होने की जो कल्पना की, उसका अभिप्राय सात प्रकार की किरणों का ही होना है।

एक वैज्ञानिक मान्यता है कि पीले, नीले, लाल आदि सात रंगों को यदि एक साथ मिला दें तो उसका एक रूप श्वेतता ही दिखाई देती है। इस प्रकार वे सातों रंग अपना स्वरूप त्याग कर श्वेत वर्ण में अन्तर्हित हो जाते हैं। यही कारण है कि सप्तवर्णात्मक सूर्य केवल श्वेत और उज्वल वर्ण का दिखाई देता है।

इन रंगों का प्रत्यक्ष अनुभव करने के लिए एक त्रिपार्श्व श्वेत काँच (बिल्लौरी पहलदार काँच, जिसे प्रिज्म भी कहते हैं) लेकर यदि धूप में रख दिया जाय तो उसमें सूर्य-किरणों के सात रंग स्पष्ट दिखाई देने लगते हैं। उससे यह निश्चय होना कठिन नहीं होता कि उन किरणों में रंगों की विभिन्नता अवश्य है। जो रंग देखे जा सकते हैं, वे निम्न हैं-

(१) पीला, (२) लाल, (३) नीला, (४) नारंगी, (५) बेंगनी या बैंजनी, (६) हरा, और (७) आसमानी। इन्हें पाश्चात्य भाषा में क्रमशः यलो, रैड, ब्लू, ओरेंज, वायलेट, ग्रीन और स्काई कलर कहते हैं। कुछ लोग नीले को इन्डिगो और आसमानी को ब्ल्यू मानते हैं।

यद्यपि यह सभी रंग पीले, लाल, नीले और सफेद के मिश्रण से बन सकते हैं। समान भाग पीले और लाल वर्ण का मिश्रण नारङ्गी रङ्ग का रूप धारण कर लेता है। लाल रङ्ग और आसमानी रङ्ग का समान भाग मिश्रण बेंगनी रंग तथा पीले और नीले का मिश्रण हरा रंग बना देता है। नीले रंग में श्वेत का मिश्रण आसमानी हो जाता है। इस प्रकार यह सात रंग ही नहीं और भी रंग कृत्रिम रूप से बनाये जा सकते हैं। किसी रंग का कम और किसी का अधिक मिला देना उसके रंग को हल्का या गहरा करने का उपाय है।

परन्तु, सूर्य-किरणों के रंगों में कृत्रिमता नहीं होती। उनके सातों ही रंग स्वाभाविक होते हैं। उनकी स्वाभाविकता को ग्रहों से निकलने

वाली किरणें और भी दृढ़, और भी सशक्त बना देती हैं। इस प्रकार उनका प्रभाव भी धरती के सभी जड़ और चेतन पदार्थों पर उन-उनकी अपेक्षा के अनुसार समान रूप से पड़ता है।

एक प्रारम्भिक परीक्षण

सूर्य किरणों में विद्यमान सात रंगों के निर्णयार्थ इस प्रकार परीक्षण कर सकते हैं कि एक ऐसी अन्धेरी कोठरी में, जिसमें सूर्य का प्रकाश आने के लिए कोई एक छोटा-सा छिद्र बना हो, किसी एक किरण के भीतर पहुँचने पर बिल्लौरी श्वेत काँचे के द्वारा उसके रंगों को पृथक्-पृथक् किया जा सकता है। किरण की सीध में एक सफेद कपड़े का पर्दा डाल कर उस बिल्लौरी काँच को किरण और पर्दे के मध्य रखें और उसे तब तक धीरे-धीरे उलट पुलट करें, जब तक कि कोई एक रंग उस पर्दे पर स्पष्ट रूप से दिखाई न दे। सब रंगों में से छँट कर निकलती हुई लाल रंग की किरण अपने से निकलती हुई सीधी लकीर के रूप में कम टेढ़ी रहेगी, जबकि नारंगी रंग की किरण उससे अधिक टेढ़ापन लिए होगी। इसी प्रकार पीली से अधिक हरी और हरी से अधिक आसमानी में टेढ़ापन होगा। आसमानी से अधिक वक्रता नीली में और नीली किरण से अधिक वक्रता बेंगनी में होगी।

परन्तु यदि दीवार पर सफेद कपड़े के स्थान पर किसी रंगीन वस्त्र का पर्दा लटका दें तो उस पर पड़ने वाली वह किरण कृत्रिम रंग के कारण परिवर्तित नहीं होगी। जिस प्रकार कि पीले और लाल के मिश्रण से जो कृत्रिम नारंगी रंग बनता है, तब लाल पर्दे पर पड़ने वाली किरण का नारंगी भाग अधिक दिखाई देना चाहिए, परन्तु ऐसा होता नहीं। इस विषय में 'हेमहोल्ज' नामक एक वैज्ञानिक का कथन है कि सूर्य की किरणों में विद्यमान सात रंगों में प्रत्येक रंग का अपना स्वतंत्र अस्तित्व है। वह अपने ही मुख्य रूप से आन्दोलित होने का परिणाम मात्रा है। इसीलिए उसे एक अविभाज्य गुण से युक्त समझना चाहिए।

आयुर्वेद का त्रिदोषात्मक सिद्धान्त

आयुर्वेद में वात, पित्त, कफ नामक तीन दोषों के प्रकोप से विभिन्न रोगों की उत्पत्ति मानी गई है। यदि उस पर ध्यान दें तो यह स्पष्ट हो जायगा कि उससे भी रंगों को ही प्रमुखता दी गई है। वात का वर्ण पीला मानते हैं पित्त का लाला और कफ का नीला। वात-पित्त के मिश्रण से नारंगी रंग, वात-कफ के मिश्रण से हरा और पित्त-कफ के मिश्रण से बेंगनी रंग होता है। त्रिदोपज विकार को सन्निपात कहते है, उसमें सभी रंग-शक्तियों का ह्रास होने से शरीर में सफेदी आ जाती है।

इस प्रकार वातादि दोषों के प्रकोप में उनसे सम्बन्धित रंगों के द्वारा रोग की चिकित्सा की जा सकती है। जिन्हें आयुर्वेद के इन तीन दोषों के विषय में ज्ञान हो, वे उन-उन रोगों का समुचित उपचार सफलता पूर्वक कर सकते हैं।

रंग और रासायनिक तत्व

वैज्ञानिकों के अनुसार तीन रासायनिक तत्व ही प्रधान हैं—हाइड्रोजन, कार्बन और आक्सीजन। हाइड्रोजन में नीले, आसमानी और गहरे नारंगी रंग का समावेश रहता है। कार्बन में पीले, पीली आभायुक्त नारंगी, पीली आभायुक्त हरे, नीलापन लिए बेंगनी और नीले रंग की विद्यमानता रहती है तथा ऑक्सीजन में प्रायः सभी रंगों का समावेश है। अब यह बताना उचित होगा कि किस रंग में कौन-सा रासायनिक तत्व उपस्थित रहता है।

पीले रंग में कार्बन, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, केलशियम, बेरियम, क्रोमियम, केडमियम, एल्यूमिनीयम, टिटेनियम, लौह, ताम्र, निकिल, जस्त, कोबाल्ट, मैंगनीज आदि तत्व रहते हैं।

लाल रंग में ऑक्सीजन, बेरियम, नाइट्रोजन, केडिमियम, स्ट्रान्टियम एव जस्त आदि अनेक रासायनिक पदार्थ मौजूद रहते हैं। जबकि नीले रंग में हाइड्रोजन, आक्सीजन, कार्बन, कोबाल्ट, कैलशियम, टिटेनि-

यम, स्त्रौन्टियम, मैंगनीज और लौह की उपस्थिति रहती है।

अब मिश्रित रंगों में उपस्थित तत्वों पर प्रकाश डालना भी उचित होगा—ललोंई पन पर गहरे नारंगी रंग में हाइड्रोजन, आक्सीजन, नाइट्रोजन, केडमियम, वेरियम, कैलशियम, ताम्र एवं लौह आदि तथा पिलाई युक्त हल्के नारंगी रंग में नाइट्रोजन, सोडियम, टिटेनियम, कोवाल्ट, मेगनीज, जस्त एवं निकिल आदि होते हैं।

आसमानी रंग में आक्सीजन, नाइट्रोजन, केडमियम, टिटेनियम, एल्यूमिनियम, क्रोमियम, मैग्नेशियम, वेरियम, कोबाल्ट, निकिल और जस्त आदि तत्वों की उपस्थिति रहती है। परन्तु जिस आसमानी में नीलेपन की गहराई हो उसमें नाइट्रोजन, आक्सीजन, टिटेनियम, कैलशियम, मैंगनीज एवं लौह की अधिकता रहती है।

यदि नीले रंग में वैंगनीपन की झलक रहे तो तो उसमें नाइट्रोजन, आक्सीजन, कैलशियम, टिटेनियम, कोबाल्ट, लौह और कार्बन अधिकता होगी। लाल और नीले रंगों के अन्य तत्वों का भी न्यूनाधिक रूप में समावेश रहता है।

पिलोंईपन युक्त हरे रंग में आक्सीजन, नाइट्रोजन, सोडियम, कैलशियम, वेरियम, एल्यूमिनियम, क्रोमियम, केडमियम टिटेनियम, ताम्र और निकिल रासायनिक तत्व उपस्थित रहते हैं।

शरीर में विभिन्न तत्वों की विद्यमानता

ऊपर जिन रासायनिक तत्वों का वर्णन हुआ है, वे सभी तत्व पृथिवी आदि पंचभूतों में रहते हैं और शरीर में भी इनकी उपस्थिति किसी न किसी रूप में रहती ही है। शरीर में प्राणवायु या आक्सीजन का रहना तो अत्यन्त आवश्यक है ही, क्योंकि उसके विना तो शरीर की कोई क्रिया सम्पन्न हो ही नहीं सकती। उसके अतिरिक्त हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, क्लोरिन, फ्लुओरिन इत्यादि वायु भी शरीर में विद्यमान रहती हैं।

कार्बन, कैल्सियम, पोटाशियम, मैग्नेशियम, सोडियम, सिलिकन, पारद, गन्धक, सोमल, ताम्र, लौह इत्यादि पदार्थ भी शरीर में विद्यमान रहते हैं। इनकी प्राप्ति हमें वनस्पति, औषधि एवं अन्न आदि के द्वारा होती रहती है।

इसका अभिप्राय हुआ कि सूर्य की किरणें हमारे शरीर में उक्त रासायनिक पदार्थों को अपेक्षित मात्रा में प्राप्त कराती रहती हैं और इसीलिए जो लोग नित्य नियमानुसार धूप-सेवन के अभ्यासी हैं, उन्हें किसी रोग के उत्पन्न होने का भय नहीं रहता। क्योंकि वे सभी आवश्यक तत्व उन किरणों से प्राप्त करते हैं।

जीवनीय शक्ति का स्रोत सूर्य

सूर्योपनिषत् का कथन है—'आदित्योऽन्तःकरण मनोबुद्धि चित्ताहङ्काराः, आदित्यो वै व्यानः समानोदानोऽपानः प्राणः आदित्यो वै श्रोत्रत्वक्चक्षुः रसनघ्राणः आदित्यो वै वाक्पाणिपादपायूपस्थाः आदित्यो वै शब्दस्पर्श रूपरसगन्धाः' अर्थात् 'सूर्य ही अन्तःकरण, मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार है, सूर्य ही व्यान, समान, उदान, अपान और प्राण रूप में पंचप्राण हैं, सूर्य ही श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, रसना और घ्राण हैं, सूर्य ही पंचकर्मेन्द्रिय है और वही उन कर्मेन्द्रियों के विषय शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध है।

इससे सिद्ध है कि शरीर में सूर्य के अंशों का ही पूर्ण रूप से समावेश है और यदि वे अंश प्राकृतिक रूप से शरीर में बने रहते हैं तो किसी भी प्रकार के विकार अथवा दोष की उत्पत्ति नहीं हो सकती। यदि हो भी गयी हो तो उन अंशों को पुनः अपने शरीर में भर लेने से उन दोषों या रोगों का निवारण हो सकता है। इसलिए सूर्य को जीवनीय शक्ति का स्रोत मानना उचित है।

सूर्य की रंगीन किरणों का शरीर पर प्रभाव

सूर्य की विभिन्न रंग की किरणें विभिन्न रोगों को दूर करने में अपनी

विशिष्टता रखती हैं। ऋग्वेद (१।५०।५२) में इन रश्मियों के द्वारा पाण्डु-रोग के नष्ट होने की पुष्टि होती है।

शरीरस्थ षट्चक्रों में रंगों की विभिन्नता

योगशास्त्रों ने शरीर में छः सूक्ष्मचक्रों की विद्यमानता बताई है। वे हैं—मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा चक्र। इनमें मूलाधार चक्र की स्थिति जननेन्द्रिय से दो अंगुल ऊपर और गुदा से दो अंगुल नीचे मानी गई है। यह चार दल का कमल लाल रङ्ग का होता है।

स्वाधिष्ठान चक्र का स्थान सुषुम्ना के अन्तर्गत चित्रिणी नाड़ी में मूलाधार चक्र के ऊपर अर्थात् पेडू पर, जननेन्द्रिय के समक्ष है। यह छः दल का सूक्ष्म कमल है, जिसका रङ्ग लोहित कहा गया है।

मणिपूर चक्र का स्थान स्वाधिष्ठान चक्र से ऊपर नाभिमूल में माना जाता है। इसके दश दल होते हैं तथा इसका रङ्ग मेघ के समान नीला होता है।

अनाहत चक्र मणिपूर चक्र के ऊपर हृदय में अवस्थित है। इस सूक्ष्म कमल के बारह दल हैं और इसका रङ्ग अरुण कहा जाता है। इसके दलों का वर्ण सिन्दूर के समान है।

विशुद्ध चक्र का स्थान अनाहत चक्र से ऊपर कण्ठ में है। यह सूक्ष्म कमल सोलह दल का है जिसका वर्ण धूम्र है। इस चक्र के मध्य में एक गोल मण्डल होता है।

आज्ञाचक्र की स्थिति भौंहों के मध्य में है। इसके केवल दो ही दल है जिनका वर्ण श्वेत है। इस चक्र का योग-विधि द्वारा भेदन होने पर कुण्डलिनी शक्ति बिना किसी अवरोध के सहस्रार पद्म में जा पहुँचती है।

अभिप्राय यह है कि योगिजन भी शरीर के इन प्रमुख सूक्ष्म अवयवों में रङ्गों की विद्यमानता मानते हैं। उनके रङ्गों का सम्बन्ध पृथिवी, सूर्य और शरीर तीनों से ही समान रूप में रहता है। इन षट्चक्रों में

जिस मणिपूर चक्र की चर्चा की गई है, उसका बीज अग्नि है। अग्नि को अनेक शास्त्रकारों ने सूर्य का ही एक रूप माना है। इसलिए उनके अनुसार यह सूर्य चक्र भी है।

वैज्ञानिकों के अनुसार यद्यपि शरीरस्थ कोई चक्र किसी अनुवीक्षण यन्त्र द्वारा भी देखा जाना सम्भव नहीं है। फिर भी वे मणिपूर चक्र को ज्ञान तन्तुओं का समूह रूप मानते हुए उसे 'सोलर प्रोक्सस' का नाम देते हैं जिसका शब्दार्थ 'सूर्य चक्र' ही है।

अथवा यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि मणिपूर चक्र ही जठराग्नि का केन्द्र है। उसी के द्वारा पाचन क्रिया का नियमन होता है। शरीर के सब अवयवों के संचालन में भी इसका बहुत बड़ा सहयोग रहता है। यदि यह चक्र स्वयं ही किसी दोष से ग्रस्त हो जाय तो उससे बहुत अधिक हानि हो सकती है। जैसे कि मन्दाग्नि, अरुचि, जी का भारी रहना, मलावरोध आदि।

विद्वानों के अनुसार जब इसे इसका अपेक्षित रङ्ग सूर्य से प्राप्त नहीं हो पाता, तब नाभिस्थ इस स्थान की क्रिया गड़बड़ा जाती है और उसी के फलस्वरूप मनुष्य का स्वास्थ्य गिर जाता है। सभी जानते हैं कि शरीर में जितने भी रोग उत्पन्न होते हैं, उन सबका कारण उदर-विकार ही है। क्योंकि पेट की गड़बड़ी ही सब रोगों को उत्पन्न कर देती है।

इस प्रकार यह चक्र ऐसा है जो सूर्य से जीवनी शक्ति प्राप्त करके शरीर के विभिन्न अवयवों में पहुंचाया करता है। यह सूर्य से अपने अनु-रङ्ग को ही ग्रहण नहीं करता, वरन् जिस-जिस अङ्ग को जिस-जिस रङ्ग की अपेक्षा होती है, वह-वह रङ्ग भी सूर्य से ग्रहण करके उन-उन अङ्गों में पहुँचाने का कार्य करता है।

इस प्रकार शरीर को निरोग रखने के लिये इस तत्व को सबल रखना आवश्यक है, क्योंकि यही चक्र सूर्य से समूचे शरीर की आवश्यकता के अनुसार जीवन तत्वों को आकर्षित करके विभिन्न अवयवों को प्राप्त कराता रहता है।

इन सबसे यह स्पष्ट सिद्ध है कि यह जगत् सात रङ्गों के द्वारा ही निर्मित है। क्योंकि जो रासायनिक तत्व सूर्य की किरणों में विद्यमान हैं, वे सभी, पृथिवी और शरीर में भी अवस्थित हैं। जब इन तत्वों की न्यूनाधिकता हो जाती हैं, तभी शरीर रोगी हो जाता है।

रक्त में उष्णता, तीव्रता और उससे लाभ-हानि

यह पहले भी बता चुके हैं, सूर्य की धूप के सेवन में अति की जाती है तो खून में तीव्रता और उष्णता बढ़ जाती है। जब धूप का प्रभाव त्वचा को भेद कर सीधा रक्त पर पड़ता है, तब खून-संचार की क्रियायें तीव्र होने लगती हैं।

उष्णता का प्रभाव रक्त पर शीघ्र ही पड़ सकता है, उसके फलस्वरूप रक्त का पतला पड़ जाना और उसकी गति में तीव्रता उत्पन्न हो जाना स्वभाविक है। इस प्रकार तेजी से रक्त का दौरा होने लगता है, तथा उसके फलस्वरूप हृदय की गति में वृद्धि होने लगती है, जिसके कारण शरीर के सभी अङ्गों को शुद्ध रक्त की प्राप्ति होती है।

और हृदय पर किरणों का पड़ने वाला ऐसा प्रभाव निम्न रक्तचाप (लो ब्लड प्रेशर) वालों के लिए अधिक हितकर रहता है। परन्तु, उच्च रक्तचाप (हाई ब्लड प्रेशर) वालों के लिए लाभकर नहीं होता। इसलिए उन्हें धूप सेवन क्रिया से बचना चाहिए अथवा अन्य किसी कारण से धूप-सेवन अपेक्षित भी हो तो इस प्रकार से करें, जिससे कि हृदय पर जिसका अधिक प्रभाव न पड़े।

रंगों की कमी से रोगोत्पत्ति

रङ्गों के कम होने से विभिन्न रोगों की उत्पत्ति होती है, यह तथ्य उक्त विवेचन से भले प्रकार समझ में आ जाता है। परन्तु, किस रंग की कमी से कौन-सा रोग उत्पन्न हो सकता है, यह जानना भी आवश्यक है। इसलिए यहाँ इसी पर प्रकाश डाला जाता है—

शरीर में पीले रंग की कमी होने से उदर सम्बन्धी अनेक विकार

उत्पन्न हो जाते हैं। जठराग्नि मन्द पड़ कर भोजन के प्रति अरुचि हो जाती है। अन्न को देखते ही मुख फिरने लगता है। मल कुछ आसमानी रङ्ग का उतरता है। गले में खुश्की के साथ त्वचा और नख भी खुश्क हो जाते हैं। कभी-कभी नखों में टेढ़ापन या सिकुड़न देखने में आती है, वह भी पीले रङ्ग की कमी से होना ही मानते हैं। शरीर में दर्द, शिर-दर्द, हड़कल, जँभाई आना आदि के साथ निद्रा नहीं आती या कम आती है। मूत्र का रङ्ग हल्के लालपन पर होता है।

लाल रङ्ग की कमी होने से कोष्ठबद्धता के साथ क्षुधा में कमी हो जाती है। शरीर टूटा-टूटा-सा, भारी एवं आलस्य युक्त हो जाता है। जी चाहता है कि कोई काम न करना पड़े तथा बैठते, लेटते में नींद अधिक आने लगती है। मल-मूत्र का वर्ण कुछ नीलापन युक्त सफेद तथा नख और नेत्रों में भी नीलापन प्रतीत होता है।

यदि नीले रङ्ग की कमी होती है तो मल पतला, पीलापन युक्त अथवा ललोंई लिए पीला उतरता है। मूत्र भी कुछ ललोंईयुक्त पीला आता है। नाखूनों का वर्ण लाल और नेत्रों में गुलाबीपन होता है। कभी-कभी ऐसा प्रतीत होता है जैसे कि आँखें दुःखने आगई हों। शरीर का तापमान बढ़ जाता है, जिसके कारण दाह और दर्द प्रतीत होने लगता है। कभी-कभी सिर दर्द की शिकायत भी हो जाती है। रोगी के चित्त में चंचलता, चिड़चिड़ापन और क्रोध भी अधिक आता है। शरीर में खून की कमी और पाण्डुवर्णता का कारण भी नीले रङ्ग की कमी होना ही है। इससे पीलिया रोग भी उत्पन्न हो जाता है और वे सभी लक्षण उत्पन्न हो सकते है, जिनका वर्णन आगे आसमानी रङ्ग की कमी वाले प्रसंग में बताये गये हैं।

बैंगनी रङ्ग की कमी से कुछ कब्ज की शिकायत रहती है और जी घबराता है। हल्के तापमान (स्लाइट फीवर) के साथ-साथ शरीर में आलस्य रहता और सामान्य शिर-दर्द की प्रतीति होती है। रोगी को कार्य करने की इच्छा नहीं होती।

हरे रङ्ग की कमी से पीले और नीले रङ्ग के कुछ सम्मिलित विकार होते हैं। शरीर का भारीपन, मल में कुछ खुश्की, स्वभाव में चिड़चिड़ापन और आलस्य रहता है। किसी किसी को हल्का शिरदर्द और जी घबराना भी देखा गया है।

यदि आसमानी रङ्ग की कमी हो तो उससे दस्त लग जाते हैं। मूत्र ललोंई युक्त पीला उतरता है तथा मल पतला, ललोंई और पीलापन युक्त होता है। किसी-किसी के मल का वर्ण हरापन युक्त पीला भी पाया गया है। आँखों में पीलेपन के साथ मन्द ज्वर एवं पित्त प्रकोप प्रतीत होता और पसीना अधिक आता है। इस रङ्ग की अधिक कमी से पाण्डु रोग की उत्पत्ति होती है, जो कि रोग-वृद्धि के लक्षणों सहित कामला का पूर्ण रूप धारण कर लेती है। उस अवस्था में जो पसीना निकलता है, उसके कारण शरीर पर पहिने हुए वस्त्र पीलापनयुक्त हो जाते हैं। ऐसे रोगी को सभी वाह्य वस्तुएँ पीली दिखाई देने लगती हैं। कुछ लोगों को आसमानी रङ्ग की अधिक कमी नहीं होती, उन्हें दस्त और वमन युक्त हैजा हो जाता है।

श्वेत रङ्ग की कमी से अनेक कष्ट साध्य और असाध्य लक्षण उत्पन्न हो सकते हैं। सन्निपात आदि की अवस्था को इस रङ्ग की कमी का ही उपद्रव समझा जाता है।

रोग-निर्णयार्थ आवश्यक निर्देश

रोग का निर्णय करने के लिए केवल उपर्युक्त लक्षणों से ही सहायता लेने से काम नहीं चलता, वरन् रोगी के मल, मूत्र, नेत्र, नख एवं शरीर आदि के रंग-रूप का निरीक्षण-परीक्षण भले प्रकार करना चाहिए। साथ ही चिकित्सा ग्रन्थों के अनुसार और अपने अनुभव के आधार पर जिस रोग के होने का निश्चय होता हो, उसके द्वारा रोग का निदान किया जाय। ध्यान रहे कि चिकित्सा आरम्भ करने से पूर्व रोग का ठीक निर्णय अवश्य कर लेना चाहिये, अन्यथा रोग और चिकित्सा की पारस्परिक विपरीतता से या तो रोगी को हानि उठानी पड़ सकती है अथवा

रोगी को लाभ ही नहीं होगा। इस प्रकार दोनों ही अवस्थाओं में चिकित्सा की व्यर्थता हो जाने पर अविश्वास भी हो जाता है।

शरीर हल्का रखने की विधियाँ

वस्ति क्रिया और एनिमा

जिस प्रकार आधुनिक चिकित्सा में एनिमा का स्थान है, वैसा ही आयुर्वेद भी वस्ति आदि कर्मों के द्वारा पेट साफ करने की व्यवस्था करता है। उसमें हरड़, सौंफ या त्रिफला आदि के द्वारा भी मलावरोध दूर करना बताया गया है। परन्तु औषधियों के प्रयोग से वस्ति प्रदेश की नसों और माँसपेशियों में निर्बलता आने लगती है, इसलिए फिर वे अपने कार्य के सुचारु रूप से निर्वाह में अशक्त रहती हैं। इसका फल यह होता है कि मलावरोध और भी बढ़ जाता है।

कुछ चिकित्सा कोष्ठबद्धता दूर करने के लिए एनिमा में साबुन के जल का प्रयोग करना उचित समझते हैं, परन्तु उससे कभी-कभी हानि होते देखी गई है। साबुन का निर्माण कास्टिक सोड़ा से किया जाता है, परन्तु निर्माण काल में किसी भी प्रकार की असावधानी रहने से सोड़ा की दाहक शक्ति किन्हीं अंशों में बनी रह जाती है। उसके फलस्वरूप वह साबुन हाथ, मुख आदि अङ्गों में भी जलन उत्पन्न कर देता है। कभी-कभी यह दोष उत्तम कोटि के साबुनों में भी रह जाता है।

यदि उस प्रकार के दोषपूर्ण साबुन का बस्तिकर्म में प्रयोग होता है तो उससे मलद्वार में व्रण और क्षत होते हुए देखे जाते हैं। यद्यपि ऐसा अवसर कभी ही आता, परन्तु कब आजाय, यह जानना असम्भव होने से कुछ रोगियों को तो प्रभावित होना ही पड़ता है।

इसी तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए अनेक चिकित्सक एनिमा आदि के

प्रयोग में बहुत सावधान रहना उचित समझते हैं। आजकल साबुन का प्रयोग न करके पहिले गर्म-जल के प्रयोग द्वारा ही संचित मल का निस्सारण कराने की विधि अपनाई जाती है।

इस प्रकार जहाँ तक सम्भव हो औषधादि के रूप में प्रयुक्त होने वाले द्रव्यों के स्थान पर यदि प्राकृतिक द्रव्यों से कार्य चल सके तो क्यों न उनसे काम लिया जाय? नीचे गर्म पानी अथवा सूर्यतप्त जल से एनिमा देने की विधि लिखी जाती है।

एनिमा की उपयुक्त विधि

इसका प्रयोग पेट की सफाई के लिए होता है। प्राकृतिक चिकित्सक तो उपवास काल में भी एनिमा लेते रहने का निर्देश किया करते हैं। इसके लिए रोगी को किसी तख्त पर अथवा कड़ी चारपाई पर चित्त लिटाना होता है। उस तख्त या चारपाई का सिरहाना नीचा और पायताना कुछ ऊँचा रखा जाता है। उस पर लेटने के पश्चात् रोगी अपने पाँवों को उकड़ूँ किये रहे।

अब एनिमा के पात्र को रोगी के लेटने के स्थान से लगभग सवा मीटर की ऊँचाई पर दीवार पर ठुकी किसी खूँटी या कील के सहारे टाँग दें और पात्र में लगभग ढाई किलो गुनगुना जल भर कर नोजल खोल कर थोड़ा-सा जल निकाल देना चाहिए।

फिर नली के गुदा में प्रविष्ट होने वाले भाग को तेल से चिकना करके गुदामार्ग के भीतर लगभग ढाई सेंटीमीटर घुसा कर जल को भीतर जाने दें और इस समय पेड़ू को बाँयी ओर से दाँयी ओर को धीरे-धीरे मलें। जब पूरा जल भीतर पहुँच जाय, तब नली को निकाल कर कुछ देर के बाद पेड़ू को पुन: उसी प्रकार मलें। उसके बाद भीतर गये हुए जल को १०-१५ मिनट तक आँतों में रोके रख कर रोगी को शौच के लिए जाने को कह दें। इस प्रकार एनिमा की क्रिया से उदर और आँतों में संचित मल निकल जाता और शरीर हल्का व निर्दोष हो जाता है। सूर्य-चिकित्सा में चिकित्सकगण सादा गर्म जल के स्थान पर अपेक्षित रंग

की बोतल में बनाये गये सूर्यतप्त जल को गर्म करके प्रयुक्त करने का भी निर्देश देते हैं।

पेट साफ करने में सहयोगी अन्य क्रियाएं

एनिमा के अतिरिक्त और भी ऐसी क्रियाएं हैं, जिनके द्वारा पेट को साफ किया जा सकता है। स्थायी लाभ के लिए निम्न क्रियाएं लाभप्रद रह सकती हैं—

(१) नीबू का रस ढाई तोले, सेंधा नमक ६ माशे और २ गिलास गर्म पानी एकत्र करके प्रातःकाल पीलें और लगभग दस मिनट तक लेट लगावें तथा बांये हाथ की मध्यमा अंगुलि को शहद अथवा सरसों के तैल में तर करलें और शौच के लिए जाकर स्वाभाविक रूप से मल को निकलने दें। जब प्रथम बार मल निकल जाय उस मधु-सिक्त अथवा तैल-सिक्त अंगुलि को गुदा में घुसा कर भीतर चारों ओर घुमावे और मल निकलने की प्रतीक्षा करें, तब पेट में संचित दूषित मल निकल जायगा। यदि चाहें तो तैल-सिक्त अंगुलि घुमाने की क्रिया को दूसरी बार पुनः कर सकते हैं।

(२) यदि पुराना कब्ज है तो उपर्युक्त प्रकार से नीबू का रस, नमक और गर्म जल मिलाकर पीवें और पीठ के बल लेट कर ३ से ५ मिनट तक नीचे लिखी विपरीतकरणी मुद्रा का अभ्यास करें (अथवा सर्वांगासन का अभ्यास करें) ऐसा करने से धीरे-धीरे मलावरोध दूर होने लगता है। क्योंकि उक्त मुद्रा के करने से उदर के सभी भागों में पानी पहुँच कर वहाँ के संचित मल को निकालने में सहायता मिलती है। इसके द्वारा वृहद् अन्त्र में जमा हुआ मल भी ढीला होकर बाहर निकल जाता है।

(३) जो लोग मलावरोध से अधिक पीड़ित तो नहीं हैं, परन्तु शरीर में कुछ आलस्य और उदर में भारीपन बना रहता है, उन्हें केवल गर्म पानी पीकर विपरीतकरणी मुद्रा आदि का अभ्यास करना उचित है। ऐसा करने से उन्हें कब्ज नहीं होगा और शरीर हल्का हो जायगा।

प्रथम दो प्रयोगों में नीबू के रस का सेवन इसलिए निर्दिष्ट हुआ है कि वह रेचक और क्षुधावर्द्धक है तथा उसमें कैलशियम की अधिकता है। इसलिए यह शरीर के लिए सब प्रकार से हितकर है। इसमें प्रयुक्त होने वाले जल के स्थान पर अपेक्षित रङ्ग की बोतल के सूर्यतप्त जल का प्रयोग कर सकते हैं।

विपरीतकरणी मुद्रा की विधि

धरती पर कुछ बिछा कर पीठ के बल लेट जाने से यह मुद्रा सिद्ध होती है। इस प्रकार लेट कर दोनों हाथों को बगलों से सटा लें और धीरे-धीरे पाँवों को ऊपर की ओर उठाते हुए पूरे शरीर को ही उल्टा खड़ा कर लें। इस स्थिति में शिर सामान्य रूप से धरती पर टिका रहता है और शरीर को उल्टा लम्बवत् खड़ा करने में दोनों हाथों से कमर को सहारा दिया जाता है।

योगाचार्यों के मत में उक्त मुद्रा मानव शरीर के लिए बहुत उपयोगी है। इससे वृद्धावस्था के वली (झुर्रियाँ पड़ना) और पली (केश श्वेतता) का निवारण होता है। मलावरोध, अपच, रक्ताल्पता आदि भी इसके अभ्यास से दूर होते हैं।

सर्वांगासन की विधि

यह आसन देखने में विपरीतकरणी मुद्रा के समान ही है। परन्तु, अन्तर इतना है कि विपरीतकरणी मुद्रा में हाथों से कमर को सहारा दिया जाता है और ठोड़ी को हृदय से नहीं लगाया जाता, जबकि सर्वांगासन में हाथो से पीठ को सहारा देते हैं और ठोड़ी को हृदय से लगा लेते हैं। जो लोग उक्त मुद्रा के करने में अभ्यस्त हो जाते हैं, उनके लिए इस आसन का अभ्यास करना भी सरल रहता है।

यह आसन विपरीतकरणी मुद्रा से अधिक लाभप्रद है। इसके अभ्यास से गले में विद्यमान थाइराइड और पैराथाइराइड ग्रन्थियों में भरपूर रक्त का संचार होने से पोषण की प्राप्ति होती है। इसलिए यह आसन सभी रोगों को दूर करने में उपयोगी माना जाता है। क्योंकि इस

आसन के अभ्यास से थाइराइड ग्रन्थि अपेक्षित रूप में उत्तेजित हो जाती है। इसके नित्य अभ्यास से कोष्ठबद्धता तो कभी रहती ही नहीं, साथ ही अन्यान्य अनेक कष्ट साध्य और असाध्य रोग भी दूर हो जाते हैं।

लंघन या उपवास की विधि

उपवास का अभिप्राय है आहार का ग्रहण न करना। उस स्थिति में सादा जल में कागजी नीबू का रस निचोड़ कर पीना अधिक हितकर रहता है। इसके अतिरिक्त और कुछ भी सेवन न किया जाय। उपवास की अवधि पूरी होने पर फलों के रस से उपवास तोड़ा जाना चाहिए। परन्तु उपवास तोड़ने में अत्यन्त सावधानी आवश्यक होती है। इसलिए उपवास आदि करने और उसे तोड़ने का कार्य किसी अनुभवी चिकित्सक की देख-रेख में करना ही उचित है।

फलों के रस का आहार

इसमें ऋतुफलों और हरी शाक-सब्जियों के रस का सेवन किया जाता है। फलों में सन्तरा, मुसम्मी, अनन्नास अंगूर, अनार, पपीता, गाजर आदि का रस लेते हैं। एक बार में २००-२५० ग्राम तक की मात्रा में रस का आहार करना उचित होता है तथा ऐसी मात्रा दिन में ३-४ बार ले सकते हैं।

यदि तरकारियों का रस सेवन करना हो तो उनका रस कच्चा न लेकर, उनको उबाल कर सूप बना लेना ठीक रहता है। यह भी गर्म-गर्म न लेकर, ठण्डा होने पर ही सेवन करना चाहिए।

फलाहार पर निर्भरता

फलों के रस का आहार करने की अपेक्षा फलों के मूल रूप आहार करने में लाभ कुछ कम होता है। फिर भी जो लोग निरन्तर फल-रस पर नहीं रह सकते, उन्हें फलाहार से काम लेना चाहिए।

फलों में मुसम्मी, सन्तरा, सेब, अंगूर, अमरूद, पपीता, केला, आम, अनार, अनन्नास, टमाटर, खरबूजा आदि अथवा किसी अन्य ऋतु

फल का प्रयोग किया जा सकता है। उचित तो यह है कि रोगी की प्रकृति और रोग की स्थिति के अनुसार ही फल का चुनाव किया जाय।

एक बार में एक प्रकार के ही फल का प्रयोग अधिक हितकर रहता है। उसका वजन एक-डेढ़ किलोग्राम तक हो सकता है। एक से अधिक प्रकार के फलों का एक साथ सेवन करने से, यदि उनकी प्रकृति में भिन्नता हुई तो, हानि हो सकती है।

जिस रोग के रोगी को सूर्य-किरणों का जो रङ्ग उपयोगी हो, उसी रङ्ग के काँच के चौड़े मुख के पात्र में उन फलों को काटकर धूप में एक घण्टा तक रखने के उपरान्त ठण्डे होने पर सेवन कराये जाँय तो अधिक लाभप्रद हो सकते हैं।

दुग्धाहार का प्रयोग

कुछ लोगों को फल भी अनुकूल नहीं रहते उनके लिए यह समस्या उत्पन्न हो जाती है कि क्या आहार दिया जाय? इस पर विचार करने के बाद यही ध्यान में आता है कि जो रोगी फलों का रस या मूल रूप में फलों का सेवन नहीं कर सकते, उन्हें दूध का सेवन कराया जाय।

वर्तमान काल में मनुष्य लंघन या उपवास में अशक्त पाया जाता है और ऐसे कम लोग ही होते हैं जो उसका निर्वाह कर पाते हों। इसलिए आजकल बड़े-बड़े चिकित्सा शास्त्री भी अधिकांश रोगियों को लंघन न करा कर दूध सेवन कराना उचित समझते हैं।

परन्तु कुछ लोगों को दूध भी नहीं पच पाता, उन्हें चाहिए कि गाय शुद्ध दूध लेकर उसमें आधा पानी मिलावें और दो उबाल देकर उतार लें। यह दूध रोगी को थोड़ी-थोड़ी मात्रा में दिन में कई बार करके दिया जा सकता है।

जिन्हें ऐसा दूध भी न पचता हो, वे और भी अधिक जल मिला सकते हैं। अथवा बकरी का दूध गाय के दूध से भी हल्का होता है, उसका सेवन कराया जाय। परन्तु यह ध्यान रखा जाय कि जिस बकरी का दूध लिया जाय वह निरोग हो।

यदि रोगिणी हुई तो उसके रोग-कीटाणु दूध पीने वाले रोगी में भी प्रविष्ट हो सकते हैं। गाय और भैंस के विषय में भी इस नियम को ध्यान में रखना आवश्यक है।

जिन लोगों को किसी प्रकार का भी दूध अनुकूल न हो, उन्हें दूध फाड़ कर उसका पानी देना उचित होता है। अथवा ऐसे व्यक्तियों को मिल्क पाउडर से बना दूध, वार्ली वाटर या ग्लूकोज-मिश्रित जल आदि दिया जाना चाहिए। इस प्रकार जिसे जो वस्तु अनुकूल प्रतीत हो, वह दी जाय।

अथवा गाय का दूध १ भाग और जल ३ भाग लेकर मिट्टी की हाड़ी में डालकर मन्दाग्नि से औटावें और फिर रोगानुकूल फिर अपेक्षित रङ्ग की बोतल में भर कर धूप में रख दें। इस प्रकार लगभग ३० मिनट से एक घण्टे तक उसे धूप में रखना चाहिए। यह दूध पीने में हल्का होता है और औषधि-गुण के कारण रोग-निवारण में सहायक रहता है।

स्वस्थ रहने के साधन

धूप स्नान की श्रेष्ठ विधियाँ

धूप-स्नान का नाम तो बहुत लोग जानते हैं, परन्तु इन्हें यह ज्ञान नहीं है कि धूप-स्नान है क्या वस्तु? इसके द्वारा उन अनेक रोगों का निवारण हो सकता है, जो कि कभी-कभी औषधि सेवन से भी नहीं हो पाता। इसमें सूर्य की किरणें शरीर की बाह्य त्वचा को वेधकर आन्तरिक अवयवों को प्रभावित करती हैं, जिससे रक्त संचार में नियमितता और अस्थियों में दृढ़ता आकर शरीर में अपूर्व शक्ति और स्फूर्ति आजाती है।

इसकी एक विधि यह है कि प्रातःकाल लगभग १० बजे अथवा मध्याह्नोत्तर लगभग ३ बजे एक गिलास गर्म जल पीकर शरीर पर

पहिने हुए सभी वस्त्र उतार देने चाहिए। इसके बाद नंगे शरीर से खुली धूप में लेट जाँय, शरीर पर ऊनी कम्बल ओढ़ें और शिर पर ठण्डे जल से भिगोकर निचोड़ा हुआ सूती वस्त्र रख लें। इस स्थिति में २०-२५ मिनट रहने के पश्चात् ठण्डे जल से स्नान करना चाहिए।

परन्तु कुछ अनुभवी विज्ञ पुरुषों ने उक्त विधि को अधिक लाभकारक न मानते हुए बिल्कुल नंगे होकर लेटने को ही अधिक उपयोगी बताया है। यह बात ध्यान देने योग्य कही गई है कि उस समय धूप उतनी तेज ही हो, जितनी शरीर को सुहा सकती हो। इसलिए यह आवश्यक है कि धूप-स्नान का समय धूप की अपेक्षित तेजी के अनुसार ही निश्चित करना चाहिए।

इस द्वितीय प्रकार के धूप-स्नान में जल से स्नान करना कुछ आवश्यक नहीं है। वरन् उचित तो यह है कि धूप-स्नान के पश्चात् जल-स्नान करने की इच्छा ही हो तो उसे धूप-स्नान के एक घण्टे भर बाद करना चाहिए।

धूप-स्नान में आवश्यक निर्देश यह है कि इसके लिए एकान्त स्थान चुना जाय और वहाँ ऐसी व्यवस्था रहे कि शरीर के सभी भागों पर सूर्य किरणें सीधी ही पड़ सकें। यदि पाँच-पाँच मिनट के अन्तर से करवट बदल ली जाय तो दोनों ओर धूप लगने की सुविधा हो सकती है। आवश्यक होने पर पेट के बल भी लेट सकते हैं। जैसे भी हो सके रोगाक्रान्त भाग को धूप में अधिक देर रखने का प्रयत्न किया जाय।

धूप में तैल-मालिश का उपयोग

धूप में लेट कर या बैठ कर शुद्ध सरसों अथवा तिली के तैल की मालिश शरीर पर की जाय तो उससे बहुत लाभ हो सकता है। उससे सूर्य-किरणों में विद्यमान लाभदायक अंशों को सरलता से खींचा जा सकता है।

जाड़ों की ऋतु में, धूप में बैठ कर तैल मालिश कराने से शरीर

के अनेक प्रकार के उपसर्ग दूर हो जाते हैं। विशेषकर, वात और शीत के रोगों में तो इसकी बहुत ही उपयोगिता है।

धूप सेवन के लाभ

धूप-सेवन के लाभों के विषय में यद्यपि बहुत-से विद्वान् पुरुष जानते हैं। परन्तु सामान्य मनुष्यों का उसका यथार्थ ज्ञान नहीं है। उससे शरीर में विद्यमान रक्त की गति में तीव्रता आती, जिसके कारण शरीर के सभी अङ्ग सक्रिय और व्यवस्थित हो जाते हैं। शीतकाल में तो यह धूप एक अमर बूटी के रूप में प्रकट होकर महंती-औषधियों से भी अधिक कार्य करती है। उसके कारण वायु और कफ से उत्पन्न हुए अनेक उपसर्गों का शमन हो जाता है।

धूप-सेवन सभी प्रकार के जोड़ों के दर्द, चोट, मोच आदि में भी बहुत हितकर रहता है। रक्त की गति में तीव्रता के कारण चर्म रोगादि में भी लाभ होना है।

धूप का सेवन ग्रीष्म ऋतु में भी किया जा सकता है, परन्तु, उसके लिये सूर्योदय के तुरन्त बाद का समय अधिक उपयुक्त रहता है। इस प्रकार ग्रीष्मकाल में भी धूप का सेवन किया जा सकता है। किन्तु इसके लिए श्रेष्ठ ऋतु जाड़ों की ही मानी जाती है।

कटि स्नान या टब स्नान की विधि

इसके लिए उपयुक्त आकार के बड़े टब बाजार में मिल सकते हैं। ऐसा टब लेकर उसमें इतना जल भरें कि बैठने पर नाभि पर्यन्त आ सके। इसमें बैठ कर मुख, नेत्र, कान आदि सभी उर्ध्व अङ्गों को भली प्रकार धोने चाहिए। इसमें रोगी के बलाबल अनुसार ५ से ३० मिनट तक बैठाया जा सकता है। जल का तापमान शरीर के तापमान से कुछ अधिक रखना उचित है। जाड़ो में आवश्यकता हो तो गुनगुना पानी प्रयोग में ला सकते हैं।

परन्तु, जहाँ तक हो सके गर्म जल का प्रयोग कम ही किया जाये, क्योंकि गर्म जल का प्रयोग स्नायुओं को दुर्बल बनाता है। एक टब,

एक ही रोगी के कार्य में लाया जाना चाहिए। यदि यह सम्भव न हो तो उसे हर बार प्रयोग में लाने से पूर्व किसी कीटाणु-नाशक घोल से धोकर स्वच्छ कर लिया जाय।

इसकी अन्य विधि यह है कि कटि स्नान के लिए विशेष प्रकार के कुर्सी जैसे आकार वाले सिरहानेदार टब में नाभि तक ठण्डा जल भर कर बैठें और पाँवों को टब के बाहर निकाल कर एक चौकी पर रखें। रोगी अपने शरीर के पृष्ठ भाग को टब के पिछले भाग से लगा ले।

अब दाँये हाथ में एक मोटा, खुरदुरा तौलिया लेकर उससे जल में डूबे हुए पेडू को दाँयी से बाँयी और बाँयी से दाँयी ओर धीरे-धीरे मलें। इस प्रकार स्नान के बाद शरीर के भीगे हुए अङ्ग को सूखे कपड़े से पोंछ डालें। फिर कम्बल ओढ़ कर तब तक लेटे रहें जब कि शरीर में गर्मी न आ जाये अथवा शरीर पर वस्त्र धारण कर लें और भ्रमण करने के लिए चले जायें अथवा कोई हल्का-सा व्यायाम करें।

वाष्प स्नान की विधि

यह स्नान पसीने के द्वारा विजातीय द्रव्य को निकालकर शरीर का शोधन करने में बहुत उपयोगी है। रोगी एक गिलास गर्म जल पीकर निर्वस्त्र होकर मूँज की बिछौना रहित चारपाई पर लेटे और सिर पर भीगा तौलिया रख ले। तथा ऊपर से कम्बल को इस प्रकार ओढ़ ले कि चारपाई सहित समूचा शरीर ढक जाय। इस प्रकार लेटने पर, जब चारपाई के नीचे भाप निकलता हुआ पात्र रखा जाता है, तब वह भाप कम्बल से बाहर न निकल कर शरीर पर ही सीधी लगती है, जिसके कारण शरीर से पसीना निकलने लगता है।

इस प्रकार जब पसीना ठीक प्रकार से निकलने पर वाष्प स्नान समाप्त हो जाये, तब शरीर को ठण्डे जल से भिगोकर, निचोड़े हुए तौलिये से पोंछ कर पाँच मिनट तक कटि स्नान करें और फिर वस्त्र

पहन कर घर के वाहर चला जाय तथा यथासम्भव ३-४ किलो मीटर तक टहल कर घर लौटे।

शीतोष्ण बैठक स्नान की विधि

इसे गर्म ठण्डा स्नान भी कहते हैं। इसकी सिद्धि भी कटि स्नान वाले टव में बैठने से होती है। शिर को धोकर उस पर भीगा हुआ वस्त्र रख लेना चाहिए तथा २ से ६ मिनट तक अथवा कुछ अधिक समय तक गर्म जल में बैठें और फिर तुरन्त ही ठण्डे जल में १ से ३ मिनट तक बैठें। तात्पर्य यह है कि जितनी देर गर्म जल में बैठें उतनी ही आधी देर ठण्डे जल में बैठना चाहिए। इस प्रकार यह क्रिया ३ वार दुहरायी जाती है।

मेहन स्नान की विधि

इसे भी कटि-स्नान वाले टव में बैठ कर करना चाहिए। उस टव में ३ सेंटीमीटर ऊँची और १५ सेंटीमीटर लम्बी-चौड़ी एक काठ की चौकी-सी रख दें। फिर उस टव में वहुत ठण्डा जल इतना भरें कि वह जल चौकी के चारों ओर तो भरा रहे, परन्तु बैठने वाला वीच का भाग सूखा रहा आवे।

अब उस चौकी पर कपड़े उतार कर बैठें और नीचे के उपस्थ, गुदा आदि जिन अङ्गों को धोना उपेक्षित हो, उन्हें धोवें। इस क्रिया से वे अङ्ग पूर्णतया स्वच्छ किये जा सकते हैं।

भीगी हुई मिट्टी की पट्टी

शुद्ध स्वच्छ मिट्टी लेकर उसे जल के साथ मिलावें और लेई के समान ढीली बना लें। यह मिट्टी एक-डेढ़ किलो ग्राम की मात्रा में लेकर मोटे वस्त्र की पट्टी पर आध इंच मोटी तह के रूप में फैला देनी चाहिए। इस पट्टी का आकार लगभग १५-२० सेंटीमीटर चौड़ा और ३०-३५ सेंटीमीटर लम्बा रखा जाय। आवश्यक होने पर आकार को न्यूनाधिक भी कर सकते हैं।

यह पट्टी नाभि एक अंगुल ऊपर से लेकर पेड़ू के पूरे भाग को के पूरे भाग को ढकती हुई प्रजननांग तक लगाकर ऊपर से सूखा ऊनी वस्त्र बांध दिया जाता है। इस पट्टी में मिट्टी को गीली करने के लिए मिलाया जाने वाला जल अपेक्षित रङ्ग की बोतल में सूर्यतप्त किया हुआ भी हो सकता है।

कटि की गीली लपेट की विधि

बारह सेंटीमीटर चौड़ा और ढाई मीटर लम्बा एक सूती कपड़ा लेकर उसे अपेक्षित रंग की बोतल के सूर्यतप्त जल में भिगोकर निचोड़ें और नाभि से नीचे कटि भाग पर्यन्त पेड़ू और उसके पीछे सब ओर इस प्रकार लपेटें कि उससे त्वचा का स्पर्श ठीक प्रकार से होता रहे। फिर उसके ऊपर से उतना ही बड़ा सूखी वस्त्र लपेट लिया जाय।

वस्ति की ढँकी हुई लपेट की विधि

दो मीटर लम्बा कोई वस्त्र या अँगोछा लेकर उसे अपेक्षित रंग के सूर्यतप्त ठण्डे जल में भिगोकर निचोड़ें और काछ कर पहिन लें यानी उसमें धोती की तरह लाँग लगा लें। उसके ऊपर से कोई ऊनी वस्त्र या फलालेन, उसे पूरी तरह ढकता हुआ लपेट लें।

गर्म सेंक की विधि

सूजन और दर्द के स्थान पर गर्म सेंक की आवश्यकता होती है। इसके लिए पुरानी रुई लेकर उसे अग्नि पर गर्म करते और उससे अपेक्षित अंग को सेंकते हैं। अथवा गर्म जल में रुई भिगोकर उससे भी सेंक करने का विधान है। यदि गर्म जल के स्थान पर अपेक्षित रंग की बोतल में पानी भर कर उसे धूप में तीन-चार घण्टे रखें और उसे गर्म अवस्था में ही किसी पात्र में डालकर उसमें रुई भिगोवें और उससे सेंक करें तो अधिक लाभप्रद रहेगा।

ठण्डी सेंक की विधि

रबड़ की थैली में बर्फ भर कर शरीर के आक्रान्त भाग पर रखनी

चाहिए । यदि थैली न हो तो किसी कपड़े में वर्फ बांधकर रखें अथवा केवल वर्फ के टुकड़े ही रख दें । वर्फ भी न मिले तो बहुत ठण्डे जल में वस्त्र भिगोकर उसे आक्रान्त अंग पर रखा जाय । अपेक्षित रंग की बोतल में सूर्यतप्त जल को वर्फ में मिलाकर, उसमें भीगे हुए वस्त्र को रखना भी हितकर है । वस्तुतः ठण्डी सेंक का प्रयोग प्रायः खून को रोकने में अधिक उपयोगी होता है ।

गर्म-ठण्डी सेंक की विधि

इसके लिए दो पात्र प्रयोग में लाये जाते है—पात्र में उबलता हुआ पानी और दूसरे पात्र में ठण्डा पानी भरा जाता है । पानी दो-दो किलो की मात्रा में भरना पर्याप्त है । अब वस्त्र के दो टुकड़े लेकर अथवा रुई की दो गद्दी जैसी बनाकर, प्रथम एक वस्त्र या रुई को गर्म जल वाले पात्र में डुबोकर निचोड़ें और आक्रान्त भाग पर फैलाकर रखते हुए ३ मिनट तक सेकें । फिर उसे हटाकर वहाँ ठण्डे पानी में डुबोकर निचोड़ा हुआ वस्त्र या रुई फैलाकर रखते हुए डेढ़ मिनट तक रखें । इस प्रकार क्रमशः गर्म और ठण्डे पानी के निचुड़े हुए वस्त्र या रुई की गद्दी के क्रम को दो से चार-बार तक दुहराना चाहिए । सेंक में प्रयुक्त होने वाले जल के स्थान पर अपेक्षित रंग की बोतल में सूर्य तप्त जल का प्रयोग कर सकते हैं ।

सूर्य नमस्कार से रोग निवारण

धूप से लाभ उठाने में सूर्य-नमस्कार एक ऐसी प्रक्रिया सिद्ध हुई है, जिसका फल सभी प्रक्रियाओं से बहुत अधिक होता है । इसमें तीन लाभों का समावेश प्रत्यक्ष रूप में दिखाई देता है—(१) धूप-स्नान या धूप-सेवन के समस्त लाभ, (२) व्यायाम के लाभ, और (३) भगवान की भावनात्मक प्रसन्नता का लाभ ।

धूप स्नान के द्वारा जो लाभ हो सकते हैं, वे सभी सूर्य नमस्कार

की प्रक्रिया द्वारा सहज ही प्राप्त हो जाते हैं। साथ ही विभिन्न प्रकार के व्यायामों से शरीर में स्फूर्ति और बल की जितनी वृद्धि हो सकती है, उससे अधिक वृद्धि सूर्य नमस्कार के प्रयोग द्वारा सम्भव है।

इसमें भगवान् सूर्य के सामने खड़े होकर हाथ जोड़ने और प्रणाम करने आदि के रूप में जो श्रद्धा भक्ति की भावना उत्पन्न होती है, उसमें रोग निवारण के विश्वास सहित यह भावना भी रहती है कि जो भगवान सूर्य सम्पूर्ण विश्व को आनन्दित करते हुए प्रकाशित हैं, वे मुझ पर प्रसन्न होकर मेरे भी रोग आदि को दूर करें। ऐसा विश्वास भी स्वतः रोग-निवृत्ति में सहायक सिद्ध होता है।

यह प्रक्रिया यद्यपि अनेक मुद्राओं में पूर्ण होती है, परन्तु उनमें से उन्हीं मुद्राओं का यहां उल्लेख किया जायगा, जो कि रोग-निवारण में अधिक सहायक हो सकें। इन मुद्राओं को विधि पूर्वक करने वाले मनुष्य शीघ्र ही अपेक्षित लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

इन मुद्राओं के क्रियान्वयन का समय प्रातःकाल सूर्योदय होने के पश्चात् ही होता है। यदि इन क्रियाओं को शरीर में सूर्य-किरणों का कोई विशेष रंग ग्रहण करने की दृष्टि से करना हो तो ग्रीष्मकाल में लगभग ९ बजे और शीतकाल में लगभग १० बजे करना चाहिए। उस अवस्था में सूर्य किरण डालने में उपयोगी ऐसे कमरे में, जिसमे समूचे शरीर पर प्रकाश पड़ने योग्य अपेक्षित रंग का काँच फिट किया गया हो, उसके समक्ष खड़े होकर प्रकाश ग्रहण करना चाहिए। परन्तु, यदि किसी रंग विशेष की अपेक्षा न हो और सभी रंग ग्रहण करने हों तो किसी खुले स्थान में सूर्य के समक्ष खड़े होकर यह क्रियाएं की जाती हैं।

सूर्य नमस्कार की दो प्रारम्भिक मुद्रायं

सर्व प्रथम प्रारम्भिक दो मुद्राओं को क्रमशः करना चाहिए। प्रथम मुद्रा के लिए सूर्य के सामने सीधे खड़े होकर दोनों पांवों को परस्पर

मिला लें। इस स्थिति में पांव, कटि, मेरुदण्ड, ग्रीवा और शिर को एक सीध में रखें।

इस प्रकार खड़े होकर सभी अंगों को बल पूर्वक भले प्रकार तानने का प्रयत्न करें और दोनों हाथों को जोड़कर हृदय पर ले जांय। हाथों के अंगूठे कण्ठ कूप से जा लगे। इस प्रकार की स्थिति में चित्त को विकार रहित रखें और नेत्रों को नासाग्र पर स्थिर कर सूर्य भगवान का ध्यान करते हुए ऐसी भावना करें कि मेरा रोग दूर हो रहा है। (देखें प्रथम मुद्रा का चित्र) यदि प्राणायाम के साथ कर सकें तो अधिक
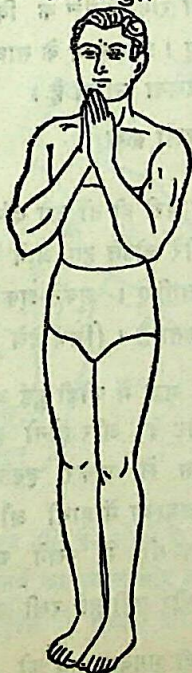
लाभ होता है। इसके लिए दोनों नासाछिद्रों से वायु खींची जाती है।

अब दूसरी मुद्रा करें पूर्ववत् सीधे खड़े रहकर पाँवों को परस्पर मिलाये रहें और हाथों को भी मिलाकर उनकी अंगुलियों को भी परस्पर गूँथ कर ऊपर की ओर ले जाँय, जिससे कि शिर दोनों भुजाओं के मध्य में रह सके।

फिर पीछे की ओर झुककर पीठ को भी पीछे की ओर यथा सम्भव लचकावें तथा वक्षस्थल, ग्रीवा और हाथों में अधिक से अधिक तनाव रखें। पांव भी सीधे तने रहें, जिससे कि मुद्रा में किसी प्रकार की विकृति न आने पावे। (देखें द्वितीय मुद्रा का चित्र) इसके साथ ही भगवान् सूर्य की भक्ति-भावना करते हुए अपनी रोग-निवृत्ति के विश्वास के साथ अगली मुद्रा का प्रारम्भ करना चाहिए। प्राणायाम के साथ प्रथम मुद्रा की हो तो इसमें श्वास को भरी हुई रखना उचित है।

तीसरी मुद्रा का अगला क्रम

तीसरी मुद्रा

यदि श्वास भरी हो तो उसे दोनों नासा छिद्रों से धीरे-धीरे छोड़ते हुए आगे की ओर झुकते जाना चाहिए। झुकते-झुकते शिर घुटनों से जा लगता है। (चित्र देखें)

अब, दूसरी मुद्रा में जोड़ी हुई अँगुलियों की पकड़ को छोड़ दें और दोनों हथेलियों को पाँवों के पास ले जाकर दृढ़ता पूर्वक स्थित करें इस अवस्था में हाथों और पाँवों के अंगूठों को एक सीध में रखने चाहिए। टाँगें भी सीधी और तनी हुई रखी जाँय।

इसके साथ ही भगवान् सूर्य को मन में श्रद्धा सहित नमस्कार करते हुए ध्यान करें

और साथ ही अपने निरोग होने की भावना करें। इस मुद्रा के प्रभाव से कन्धों और भुजाओं में शक्ति आती, त्वचा कोमल होती और शरीर का आलस्य दूर हो जाता है।

चौथी मुद्रा का उपयोग

यह मुद्रा सीधे खड़े रहने की स्थिति में दाँया-पाँव आगे और वाँया पाँव पीछे रखने से वनती है। इस प्रकार दोनों पाँवों को टिका कर वक्ष, ग्रीवा और सिर को ऊपर की ओर सीधे तानें और हाथों को धरती पर इस प्रकार टिकावें कि दांयी टाँग उनके बींच में आ जाय। (चित्र देखें)

चौथी मुद्रा

अव दृष्टि को भौंहों के मध्य में या नासिका के अग्र भाग में स्थिर करके सूर्य का ध्यान और नमस्कार करें तथा साथ ही अपने रोग-दोष की निवृत्ति की भावना करें।

इस मुद्रा के प्रभाव से सम्पूर्ण अंग की पेशियाँ सुदृढ़ हो जाती हैं। दुर्वल और कृश शरीर वालों के लिए तो यह वरदान स्वरूप ही है।

जोड़ों में दर्द आदि वात-विकार या चोट-मोच का दर्द हो, उन्हें इसके अभ्यास से लाभ उठाना चाहिए।

पाँचवीं मुद्रा का प्रभाव

यह मुद्रा शरीर के सभी अवयवों को सुदृढ़ बनाती और सब प्रकार की वेदना को दूर करती है। इसके अभ्यास से हाथ, पाँव, घुटने, कुहनी

पांचवीं मुद्रा

ग्रीवा एवं सिर आदि में अत्यन्त बल का प्रादुर्भाव होता है। सभी अवयवों की विकृति दूर करने में इसका उपयोग हितकर है।

इसमें दोनों पाँव पीछे और दोनों हाथ आगे रखे जाते हैं। दोनों हाथ बराबर की दूरी पर रहने चाहिए इस प्रकार की स्थिति में पूरे शरीर का भार हाथों और पाँवों पर ही रहेगा।

अब, एड़ियों, पंजों, पिण्डलियों, घुटनों और जंघाओं को परस्पर मिला लें और शरीर के ऊपरी अंग का भार दोनों हाथों पर स्थित करे। इस स्थिति में सिर दोनों हाथों के बीच में रहेगा।

नितम्बों और कटि भाग को ऊपर की ओर जितना उठा सकें,

उठावें। इस स्थिति में सिर पाँवों के पंजों के सामने और दृष्टि पाँवों के अँगूठों पर स्थिर रहेगी।

अब, सूर्य को नमस्कार कर अपने शरीर में बलवृद्धि और रोग-निवृत्ति की भावना के साथ इस मुद्रा का समापन करना चाहिए।

छठी मुद्रा का प्रभाव

इसमें श्वास को रोक कर नीचे की नीचे की ओर झुकना और पेट के बल लेटना होता है। इस प्रकार लेटने से वक्षस्थल और घुटने धरती से स्पर्श करते रहते हैं तथा पाँवों की अँगुलियां धरती से लगी रहती हैं और दोनों हाथ कुहनियों से मुड़कर इस प्रकार रहते हैं कि दोनों हथेलियाँ धरती से स्पर्श करती रहें। किन्तु, शेष भाग धरती से ऊँचा या अधर रहता है। (चित्र देखें)

छठी मुद्रा
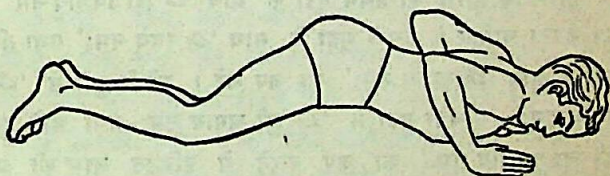
इस प्रकार की स्थिति के साथ भावमय चित्त से शिर को धरती से टिका कर प्रणाम करें और अपने शरीर को सुपुष्ट व सुदृढ़ बनने की भावना करे।

यह मुद्रा शरीर के पृष्ठ भाग को सुदृढ़, सुपुष्ट और सबल बनाने में उपयोगी है। नितम्ब भाग और रीढ़ की अस्थि आदि में भी अत्यन्त शक्ति आती है। वक्ष भाग और घुटनों के पृथिवी से स्पर्श करते रहने के कारण उनमें पार्थिव गुणों का समावेश होता है। इस प्रकार यह मुद्रा सर्वाङ्ग में बल और सौष्ठव उत्पन्न करने में अधिक उपयोगी है।

इस प्रकार सूर्य नमस्कार की यह छः मुद्राएँ मनुष्यों के लिए बहुत उपयोगी हैं। इनके अभ्यासी को पूर्ण रूप से आरोग्य-लाभ हो सकता है।

विश्वास की महती शक्ति

जो लोग भगवान् की शक्ति में विश्वास करते हैं, उन्हें भावनात्मक ढंग से भगवान् सूर्य की प्रसन्नता प्राप्ति के उद्देश्य से इन मुद्राओं का अभ्यास करना चाहिए। ध्यान रखें कि विश्वास में बहुत बड़ी शक्ति है। इसका प्रमाण यह है कि मनुष्य अपने रोगी होने का विश्वास करले तो वह अवश्य ही रोग-पीड़ित हो जाता है। इसी प्रकार रोग-निवारण का विश्वास रखने के फलस्वरूप रोगों की निवृत्ति होती हुई देखी जाती है। आपने हिप्नोटिज्म के चमत्कारों को देखा हो तो आप समझ सकते हैं कि उसके सभी चमत्कार केवल विश्वास पर ही आधारित होते हैं।

आस्तिक व्यक्ति को प्रथम मुद्रा के साथ 'ॐ ह्रां मित्राय नमः' का जप करना चाहिए। दूसरी मुद्रा के साथ 'ॐ रवये नमः' तथा तीसरी मुद्रा के साथ 'ॐ सूर्याय नमः' का जप करे। चौथी मुद्रा में 'ॐ ह्रैं भानवे नमः', पाँचवी मुद्रा में 'ॐ ह्रौं खगाय नमः' तथा छठी मुद्रा में 'ॐ ह्रः पूषणाय नमः' का जप करने से इच्छित लाभ की प्राप्ति सम्भव है।

परन्तु, सभी मुद्राओं में उक्त मन्त्रों का जप मन ही मन करना अधिक फलदायक रहता है। यदि इस विधान के साथ मुद्राओं का अभ्यास किया जाय तो रोग-निवारण की दिशा में बहुत कुछ सफलता मिल सकती है।

सूर्य-चिकित्सा में उपयोगी उपकरण

सूर्य-स्नान या धूप-सेवन आदि विधियों से जो लाभ हो सकता है, उससे अधिक लाभ इस विधि से सम्भव है कि जिस विकार में जिस रङ्ग की कमी हो, उसमें उसी रङ्ग की प्राप्ति रोगी को कराई जाय और यह कार्य न तो सामान्य रूप से धूप-सेवन करने से सम्भव है और न सूर्य-स्नान से ही पूरा हो सकता है।

यह पहिले बता चुके हैं कि सूर्य की किरणों में सात रंग होते हैं, उनमें से किसी निश्चित रंग की किरण को पृथक् करके उसका रङ्ग ही रोगी के शरीर में प्रविष्ट कराया जाना हितकर होता है। इस सिद्धान्त के अनुसार यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि सप्तरङ्गी किरणों में से कोई एक निश्चित रङ्ग की किरण का पृथक्करण किस प्रकार किया जाय? इस प्रकरण में इसी पर विचार करेंगे—

इस कार्य में काँच, बोतल, जल, घृत या तैल की सहायता ली जा सकती है। पीले, लाल, नीले, आसमानी, बैंगनी, हरे और सफेद रङ्ग का एक-एक काँच और एक-एक बोतल लेनी चाहिए। काँच इसलिए कि उसे किसी खिड़की आदि पर चढ़ा कर, उससे छन कर आने वाली किरण का प्रकाश रोगी के शरीर पर डाला जा सके तथा बोतल इसलिए कि उसमें जल, घृत अथवा तैल भर कर धूप में रखा जाय, जिससे कि निश्चित रंग की किरण उस जल, घृत या तैल में अपने गुणों को समाविष्ट कर सके। इस प्रकार सिद्ध हुआ जल रोगी को औषधि रूप में सेवन कराया जाता है और घृत, तैल का प्रयोग लगाने या मालिश करने के रूप में होता है। कुछ लोग धूप द्वारा सिद्ध घृत या तैल का प्रयोग खाने की औषधि के रूप में भी किया करते हैं।

रंगीन काँच या बोतल का सिद्धान्त

आप जिस रङ्ग का काँच लेकर उसके द्वारा शरीर पर प्रकाश

डालेंगे, वही रङ्ग शरीर में समाविष्ट होगा। क्योंकि जिस रङ्ग का काँच होगा, उसी रंग की किरण को अन्य रंगों की किरणों से पृथक् करके प्रकाश देने का कार्य करेगा। इस प्रकार यदि आप पीले रङ्ग का काँच लेकर उससे छनी हुई किरण को शरीर पर डालते हैं तो उसके प्रभाव से शरीर में पीले रङ्ग से होने वाले रोग में लाभ होने लगेगा।

इसी प्रकार जिस रङ्ग की बोतल में जल, घृत अथवा तैल भर कर सिद्ध किया जायगा, वह जल आदि उसी रङ्ग की कमी से उत्पन्न हुए रोग में लाभदायक सिद्ध होगा। इस प्रकार बोतल में सिद्ध किया हुआ जल आदि द्रव्य दवा का रूप धारण कर लेता है।

परन्तु, इस कार्य में उपयोगी होने वाले काँचों का चयन करना भी कोई बहुत सरल कार्य नहीं है। क्योंकि रंगे हुइ काँचों का निर्माण अनेक रासायनिक रङ्गों के योग से होता है। उसमें यह भी सम्भव है कि ऊपर से बिल्कुल पीला दिखाई देने वाला काँच किरणों के संयोग में आकर पीले केसाथ लाल रङ्ग की किरण का भी कुछ अंश खींच लाये। फिर भी पीले काँच में अन्य रङ्ग की किरणों के आकर्षण की सम्भावना कम ही रहती है। क्योंकि यह काँच प्राय: अपने द्वारा पीली किरण के अतिरिक्त किसी अन्य रङ्ग की किरण को पार नहीं होने देता।

फिर भी यदि पीले काँच से कुछ अत्यल्प अंश में लाल किरण का रङ्ग खिच भी आये तो अधिक हानि नहीं पहुंचाता। परन्तु ऐसे काँच से किरण का गुण ग्रहण करने के समय में कुछ कमी कर देनी चाहिए। कुछ अनुभवी पुरुषों के मतानुसार यदि किसी अन्य रङ्ग के आकर्षण की आशंका हो तो काँच के नीचे महीन मलमल का टुकड़ा हल्दी के रङ्ग से रङ्ग कर लेना चाहिए। अथवा रङ्गा हुआ सैल्यूलाइड पेपर भी लगाया जा सकता है।

लाल रङ्ग का काँच भी, यदि ठीक लाल रङ्ग का हो तो लाल रङ्ग के ग्रहण में अधिक उपयोगी होता है। यह काँच गर्मी फेंकने में भी उप-

योगी है, अर्थात् जिस रोगी के शरीर को गर्मी प्राप्त करना अपेक्षित हो, उसके लिए लाल रङ्ग के काँच का प्रकाश ग्रहण करना चाहिए।

परन्तु यदि अधिक गर्मी ग्रहण करने की आवश्यकता हो तो नारङ्गी रङ्ग के काँच का उपयोग करना उचित है। क्योंकि लाल रङ्ग के काँच की अपेक्षा नारङ्गी रङ्ग के काँच से अधिक गर्मी निकलती है। यद्यपि लाल रङ्ग के काँच से गर्मी उत्पन्न होने की प्रसिद्ध है, तथापि नारङ्गी रङ्ग का काँच अधिक उष्णता से युक्त होता है।

नीले रङ्ग का काँच अधिक ठण्डा माना जाता है। परन्तु उससे भी अधिक ठण्डा हरा रङ्ग होता है। यदि हरा काँच आयरन आक्साइड से रंजित हुआ हो तो वह बहुत ठण्डा रहता है तथा पित्त विकार या गर्मी आदि से घबराते हुए रोगी को इसका प्रकाश शीघ्र शान्त प्रदान करता है।

आसमानी कांच भी उष्णता रोकने में उपयोगी माना जाता है। यह प्रायः दो प्रकार का अधिक प्रसिद्ध है—(१) क्यूप्रो-डाइमोनियम, और (२) मेजरीन या कोबाल्ट। प्रथम प्रकार का काँच अपने रङ्ग के अनुकूल अधिक हितकर रहता है, जबकि दूसरी प्रकार के काँच में आसमानी किरणों के प्रवेश के बाद नारङ्गी और लाल रङ्ग की किरणें भी प्रचुर मात्रा में प्रविष्ट हो जाती हैं। इसके फलस्वरूप शोथ और दाह युक्त में तो अपेक्षित लाभ हो सकता है, परन्तु यह कांच प्रथम प्रकार के कांच जैसी ठण्डक और गुण प्रदान नहीं कर सकता।

आसमानी रङ्ग के उक्त दोनों में से कौन-सा काँच किस प्रकार का है? यह जानने के लिए एक अन्धकार युक्त कोठरी में जाकर काँच को अपने नेत्रों के आगे रखें और काँच की दूसरी ओर माचिस की सींक जलावें तो उसके कारण उससे निकलने वाला प्रकाश कुछ लाल-नीला और बेंगनी रङ्ग का दिखाई देगा। इसका अभिप्राय स्पष्ट हुआ कि उसका रङ्ग विशुद्ध आसमानी नहीं है, तो भी वह दूसरे प्रकार का काँच, प्रथम प्रकार के अभाव में ग्रहण किया जा सकता है।

यदि रङ्गीन काँचों के मिलने में कठिनाई प्रतीत हो तो सफेद काँच लेकर उसके नीचे रङ्गीन पतङ्गी कागज, रङ्गी हुई महीन मलमल या वायल, रङ्गीन सैल्यूलाइड पेपर लगा सकते हैं। अथवा उसे अपेक्षित रङ्ग के पेंट से, जिसमें चमक न हो. हल्के कोटिंग द्वारा रङ्ग लेनी चाहिए। काँच के अभाव में उस रङ्ग की प्लास्टिक शीट भी ली जा सकती है।

काँच या प्लास्टिक का प्रयोग

इस प्रकार काँच या प्लास्टिक शीट को ६ इन्च चौड़ा और आठ इन्च लम्बे अथवा दस इन्च चौड़ा, चौदह इन्च लंम्बे आकार में या आवश्यकतानुसार कम या अधिक लम्बाई में कटवा लें और उन्हें ठीक प्रकार से धोकर साफ कर लें और पोंछ लें। उसके चारों ओर तस्वीर या प्लेट के समान काठ का चौखटा लगवायें। उस चौखटे में थोड़े-थोड़े अन्तर से कुण्डे आदि लगवादें, जिससे कि उसे खिड़की आदि पर बाँध कर फिट किया जा सके।

चिकित्सा कार्य में प्रयुक्त किये जाने वाले कक्ष में सूर्य की किरण प्रवेश करने वाली खिड़की में इस प्रकार की व्यवस्था रखी जा सकती है कि खिड़की पर कोई खाँचेदार फ्रेम स्थायी रूप से फिट कर दिया जाय और उस फ्रेम के खाँचे में काँच युक्त फ्रेम को लगा दिया जाय। इससे काँच फिट करने में कठिनाई उपस्थित नहीं होती।

प्रयोग के समय शीशे को स्वच्छ रखा जाय, उस पर दाग-धब्बे न रहें। कमरे में सूर्य की किरणों के अन्य प्रवेश मार्ग हों तो उन्हें पूर्ण रूप से वन्द कर देना चाहिए।

खिड़की पर अपेक्षित रङ्ग का काँच चढ़ाकर रोगी उससे छः इन्च की दूरी पर किसी स्टूल, कुर्सी या चारपाई आदि पर वैठ या लेट सकता है। शरीर के जिस भाग पर किरण डालनी हो, उस भाग के वस्त्र हटा कर नङ्गा कर लें और अपेक्षित समय तक प्रकाश ग्रहण करें।

यदि धूप न हो तो उसी रङ्ग के बल्ब का फोकस आक्रान्त भाग पर डालना चाहिए। इससे उतना अधिक लाभ तो नहीं होता, फिर भी आंशिक लाभ अवश्य प्राप्त होता है। यदि रंगीन बल्ब का प्रकाश न डाला जा सके तो किसी लैम्प आदि के प्रकाश के आगे रङ्गीन काँच रखकर काम चला सकते हैं। धूप के अभाव में इस प्रकार डाला जाने वाला प्रकाश काम चलाऊ रूप में लाभ कर सकता है।

इसी प्रकार बोतलें भी रङ्गीन ली जानी चाहिए। उन्हें सोड़ा-साबुन आदि के साथ गर्म जल में डालकर ठीक प्रकार साफ करें और फिर कुए की लाल दवा (पोटास परमेंगनेट) के हल्के घोल से धोकर पुनः साफ पानी से धो लें। इस प्रकार साफ करके बोतल को धूप में सुखा लिया जाय।

यदि रङ्गीन बोतलें न मिलें तो सफेद बोतलों को स्वच्छ करके उन पर अपेक्षित रङ्ग का प्लास्टिक पेपर, सैल्यूलाइड पेपर, पतङ्गी कागज या रङ्गा हुआ महीन वस्त्र चारों ओर लपेट देना चाहिए। इस विधि से भी रङ्गीन बोतल का काम चलाया जा सकता है।

बहुत बार पीले, लाल, नीले रङ्ग की बोतलों के अतिरिक्त अन्य रंग की बोतलें नहीं मिलतीं। उस अवस्था में यदि गहरे हरे रंग का प्रयोग आवश्यक हो तो नीली बोतल पर पीले रंग का सैल्यूलाइड पेपर या पतंगी कागज आदि लपेटने से काम चल सकता है। परन्तु हल्के हरे रंग का पानी या स्नेह बनाना अपेक्षित हो तो पीले रंग की बोतल पर नीले या आसमानी रंग का सैल्यूलाइड पेपर लपेटना चाहिए।

यदि नारंगी रंग की बोतल न मिले तो लाल रंग की बोतल पर पीले रंग का पेपर लपेटें तो गहरा नारंगी प्रभाव उपलब्ध होगा, जबकि पीले रंग की बोतल पर नीले रंग का कागज लपेटने से हल्के नारंगी रंग का गुण प्राप्त होता है।

बैंगनी रंग की बोतल के अभाव में नीली बोतल पर लाल कागज

लपेटने से गहरा बेंगनी रंग (नीलापन युक्त) उत्पन्न होता है, जबकि लाल बोतल पर नीला कागज लपेटने से अधिक लाली युक्त बेंगनी रंग का गुण प्राप्त हो जाता है।

श्वेत रंग के पानी का प्रयोग श्वेत रंग की बोतल से सहज में ही किया जा सकता है। परन्तु ध्यान रहे कि श्वेत रंग की किरण ग्रहण करने या श्वेत बोतल का जल सेवन करने से अधिक लाभ नहीं हो पाता. इसलिए इसकी अपेक्षा वाले रोगियों को धूप-स्नान या सीधी धूप का सेवन हितकर हो सकता है।

किसी भी रोग में सूर्य-किरणों का प्रयोग रोग के लक्षण देख कर रंग विशेष की कमी का निर्णय होने पर ही उस रंग के ग्रहण रूप में करना लाभदायक होता है। बिना विचारे, कोई भी चिकित्सा क्रम प्रारम्भ करना उचित नहीं होता। उससे कभी अधिक हानि भी हो सकती है।

बोतलों में भरा जाने वाला जल

बोतलों में भरने के लिए जल बहुत स्वच्छ लेना चाहिए। नदी का ताजा जल किसी कांच के पात्र में २-३ घण्टे रखा रहने के पश्चात् छान कर बोतलों में भरा जा सकता है। तालाब या कुँए का जल लेते समय ध्यान रखा जाय कि वह तालाब या कुँआ अधिक उपयोग में आता हो और उसमें कीड़े मारने के लिए पोटाश परमेंगनेट या अन्य कोई कीटाणु नाशक दवा डाली गई हो। दवा डाले जाने वाले दिन का पानी नहीं लेना चाहिए, वरन् ३-४ दिन बाद का पानी लिया जाय, जिससे कि जल के कीड़े भी मर गये हों और दवा का प्रभाव भी हट गया हो।

अथवा नल का ताजा जल लेना भी उपयुक्त रहता है। स्रवित जल प्रयोग में ला सकें। तो सबसे अच्छा है। कुछ अनुभवियों के अनुसार जल को एक उबाल देकर ठन्डा होने पर छान कर बोतल में भरना चाहिए। यदि ऐसे स्वच्छ सरोवर का निर्दोष जल काम में लाया जाय,

जिस पर दिन में धूप और रात्रि में चाँदनी पड़ती रही हो, उसे वह बहुत उपयोगी है। ऋषियों की भी मान्यता है—

दिवा सूर्यांशु सन्तप्तं रात्रौ चन्द्रांशु शीतलम्।
अंशूदकमिति ख्यातं आपुरारोग्य दायकम्॥

अर्थात्—दिन में जो जल को सूर्य की किरणों द्वारा तपाया गया हो और रात्रि में चन्द्रमा की चाँदनी द्वारा शीतल किया गया हो, वह 'अंशूदक' संज्ञक जल सदैव के लिए आरोग्य प्रदान करने वाला होता है।

इस प्रकार श्रेष्ठ पानी लेकर उसे छानने के पश्चात् जिस रंग की बोतल में भरना अपेक्षित हो उसमें भर देना चाहिए। परन्तु, ध्यान रहे कि बोतल का तीन चौथाई भाग ही जल से भरा जाय, चौथाई भाग खाली रहना आवश्यक है। यदि एक भाग खाली न रहेगा तो धूप की अधिक गर्मी से बोतल गर्म हो जाने के कारण उसके फूटने का भय रहता है।

जल भरने के बाद बोतल पर उसी रंग की ढक्कन लगावें। यदि वैसा ढक्कन न मिले तो कार्क लगाकर मजबूती से बन्द कर दें जिससे कि उसमें वायु का प्रवेश न हो सके। बोतल को बाहर से भी किसी सूखे हुए वस्त्र से पोंछकर धूप में किसी काठ के तख्ते या चौकी आदि पर रख दें।

बोतल को धरती पर न रखकर काठ पर रखने का इसलिए उपयोग है कि बोतल में जल को प्राप्त होने वाले सूर्य-गुण धरती को भी प्राप्त होते रह सकते है और ऐसा होने पर मानो अल्प गुण ही प्राप्त करेगा। इस प्रकार धरती से स्पर्श करती हुई बोतल ऊपर से गर्मी प्राप्त करती ही है, धरती से स्पर्श करती हुई बोतल से तो गर्मी प्राप्त करती ही है, धरती के भी गर्म हो जाने से उसकी गर्मी से भी वंचित नहीं रहती। इसके फलस्वरूप बोतल का जल भी समय से पूर्व ही गर्म हो जाता है तो वह अल्प गुण वाला ही रहता है।

यह सभी जानते हैं कि तेज आंच में पकाये जाने वाले खाद्य-पदार्थ मन्द आँच में पकाये गये पदार्थों से अल्प गुण और निकृष्ट स्वाद वाले रहते हैं। इस प्रकार धरती को स्पर्श करके रखी हुई बोतल नीचे-ऊपर दोनों ओर से तीव्र ताप प्राप्त कर अपने जल को यथार्थ रूप में परिपक्व और श्रेष्ठ गुणों से युक्त नहीं कर सकती।

परन्तु, यह भी ध्यान रहे कि बोतल बहुत स्वच्छ स्थान पर रखी जाय। वहां धूलि, धुँआ या कूड़ा-करकट आदि न हो। काठ का पट्टा या चौकी आदि, जिस पर बोतल रखी जाय, बोतल के रङ्ग में ही रङ्गी हुई होनी चाहिए।

जल के परिपाक की अवधि

सामान्यतः बोतल का जल ४-५ घन्टे में ठीक प्रकार से सिद्ध हो जाता है। कुछ लोग इसे ८ घण्टे तक धूप में रखना उचित मानते हैं। हमारे मत में सूर्योदय होने के बाद ७-८ बजे के लगभग बोतल रखी जाय और सूर्यास्त से पहले उठा लेनी चाहिए। परन्तु, आवश्यक होने पर, जब बोतल के खाली भाग में जल की बूँदें स्थित होती हुई दिखाई पड़ें, तभी बोतल को उठाकर ठण्डी होने दें और जब बिल्कुल ठण्डी हो जाय तब उसके जल का रोगी पर प्रयोग करें। किन्तु ऐसा जल गुण में उतना लाभदायक नहीं होता, जितना कि अधिक समय तक धूप में रखी हुई बोतल का होता है। क्योंकि कम समय में ठीक परिपाक नहीं हो पाता।

जल के पूर्ण परिपाक होने की पहिचान यह है कि बोतल के खाली भाग में उठकर जल की बूँदें उभरने लगती हैं। जब तक ऐसा न हो तब तक जल को सिद्ध हुआ नहीं समझना चाहिए।

जल को प्रयोग में लाने से पूर्व बोतल को शीघ्र शीतल होने दें, क्यों कि जब तक पानी गर्म रहता है, तब तक औषधि के रूप में उसका प्रयोग वर्जित है। परन्तु, ध्यान रहे कि बोतल को ठण्डा करने के लिए

किसी फ्रिज आदि में रखने या वरफ में रखने आदि के रूप में कृत्रिम उपाय नहीं करने चाहिए, वरन् उसे स्वाभाविक रूप से ठण्डी होने देना चाहिए। अन्यथा, कृत्रिम उपाय से ठण्डा किया हुआ जल सेवन के योग्य नहीं होता। उससे हानि हो सकती है।

बोतल को सूर्यास्त होने से पहिले ही उठाकर किसी ऐसे स्थान पर रखें, जहां सील न हो तथा चन्द्रमा या तारे अथवा दीपक, विद्युत् आदि का भी प्रकाश न पड़े। अन्यथा वह जल गुण-रहित हो जाता है।

यह भी ज्ञातव्य है कि धूप में रखने के समय अथवा जल तैयार होने पर बोतल को किसी अन्य रङ्ग की बोतल के पास नहीं रखना चाहिए। अन्यथा दूसरी बोतल की छाया (रिफ्लेक्शन) पड़ने से अन्य रङ्ग के गुण भी समाविष्ट होने से बोतल का जल वेकार हो जायगा।

जिस रङ्ग की बोतल का पानी बनाया जाय, उसे बनने के बाद ठण्डा होने पर उसी रङ्ग की दूसरी बोतल में उलटकर रखना चाहिए। इस प्रकार यह जल ३-४ दिन तक सरलता से रखा जा सकता है।

यदि उसी रङ्ग की दूसरी बोतल न हो तो सफेद रङ्ग की बोतल में भी रख सकते हैं। परन्तु, इस प्रकार रखा गया पानी एक दो दिन से अधिक काम नहीं देता।

तैल या घृत का प्रयोग

जल के ही समान तैल या घृत का भी निर्माण कर सकते हैं। उसके लिए तिली का तैल, सरसों का तैल अथवा नारियल का तैल प्रयोग में लाया जाता है। यह तैल वाल लम्बे और काले करने आदि से लेकर मस्तिष्क को तरो ताजा रखने में भी उपयोगी रहते हैं। कुछ तैल विभिन्न प्रकार के वात-रोगों और चर्म रोगों आदि को दूर करने के उद्देश्य से मालिश के काम में लाये जाते हैं। फोड़ा-फुंसी, मुंहासे आदि पर फुरेरी से लगाये जा सकते हैं। मुख द्वारा सेवन करने में भी कुछ तैलों का प्रयोग किया जा सकता है।

सूर्य-रश्मियों से प्रभावित किये जाने वाले घृत खाने के कार्य में ही अधिक आते हैं। इसके लिये शुद्ध गाय का घृत लेकर चौड़े मुख की रङ्गीन शीशी में रखकर डाट लगानी चाहिए और एक सप्ताह पर्यन्त नित्य प्रति प्रातः-सायं धूप में रखना चाहिए।

दानेदार चीनी का उपयोग

जव किसी कारणवश पर्याप्त धूप नहीं निकलती, तव पानी का का तैयार करना कठिन हो जाता है। उस समय के लिए दानेदार चीनी को सूर्य गुण से प्रभावित करके सुरक्षित रखना उपयुक्त रहता है। यह चीनी कांच के अपेक्षित रङ्ग के मर्तवान में रखकर प्रातःकाल में सायं काल तक एक डेढ़ मास पर्यन्त नित्य नियम पूर्वक धूप में रखी जानी चाहिए। यदि किसी दिन धूप न निकले तो मर्तवान को वाहर न रखें।

इसकी प्रयोग विधि यह है कि जिस रङ्ग के मर्तवान में चीनी वनाई गई हो, उसी रंग की वोतल में चौथाई लिटर स्वच्छ, ताजा, छना हुआ जल डालकर उसमें उत्तम चीनी डेढ़ ग्राम मिलाकर खूब हिलावें और रख दें। जब चीनी पानी में घुल जाय तव पुनः हिलाकर प्रयोग में लावें।

यदि दानेदार चीनी के स्थान पर दूध से वनी लई चीनी अथवा होमियोपैथी की दवा बनाने में प्रयुक्त होने वाली गोलियाँ काम में ली जांय तो अधिक हितकर रह सकती हैं। इनके बनाने की विधि भी दाने दार चीनी की विधि के ही समान है। यह पानी में मिलाये बिना भी आवश्यकतानुसार एक या दो गोली प्रत्येकवार में दी जा सकती हैं।

वायु-पान से स्वास्थ्य लाभ

जिस प्रकार रङ्गीन बोतल का जल पीना हितकर है, उसी प्रकार रङ्गीन बोतल से वायु-पान करना भी लाभदायक रहता है। इसकी विधि इस प्रकार है—

जिस रङ्ग की वायु का पान करना हो, उस रङ्ग की पांच खाली

बोतलें लेकर जल से भले प्रकार साफ करें और किसी कागज पर औंधे मुख रख दें, जिससे कि भीतर का जल बिल्कुज निचुड़ जाय। इस प्रकार बोतलें भीतर और बाहर दोनों ओर से शीघ्र सूख जाती है।

जब वह सूख जांय, तब उन खाली बोतलों पर कार्क लगाकर धूप में उसी प्रकार रखें, जिस प्रकार कि जल की बोतलें रखी जाती हैं। ऐसा करने से उनमें कार्क लगाने से पहिले जो वायु भरा हुआ था, वह सूर्य-किरणों के योग से बोतल के रङ्ग का हो जाता है।

सूर्य-चिकित्सा के प्रवर्तन कर्त्ता डा० बैबिट का कथन है कि 'Another very important application of this system of refind therapentics is the inhalation of colour charged air' अर्थात् इस विशुद्ध चिकित्सा पद्धति की दूसरी आवश्यकत विधि रङ्गीन की गई वायु को श्वास के भीतर खींचना है।' इस प्रकार वायु-पान की यह विधि भी द्वितीय कक्षा में बहुत उपयोगी मानी गई है।

यह रङ्गीन की हुई वायु बोतल का कार्क खोलकर उसके मुख पर अपना मुख लगाकर पीना चाहिए। एक अनुभवी योग - चिकित्सक इस प्रकार की वायु को नासाछिद्र द्वारा शरीर के भीतर खींचना अधिक उपयोती मानते हैं।

यह बोतलें प्रातः ९-१० बजे के लगभग धूप में रखें और चार-पाँच घन्टे बाद उठालें। इनसे वायु पान करने की विधि यह है कि एक हाथ में एक बोतल उठाकर दूसरे हाथ से उसका कार्क खोलें और बोतल के मुख को अपने बाँये नासा छिद्र से लगाकर उसमें भरे हुए वायु को खींचे और बोतल के कार्क को पुनः बन्द कर दें। तत्पश्चात् दांये बासा छिद्र से उस वायु को निकाल देना चाहिए।

अथवा बोतल के मुख को अपने मुख से लगाकर वायु को खीचें और दोनों नासा छिद्रों से उस वायु को बाहर निकाल दें। इस प्रकार प्रत्येक बोतल का कार्क खोलकर उसमें से प्रत्येक के वायु को तीन-तीन बार खींचें और बाहर निकाल दें।

एक बात और भी ज्ञातव्य है कि पीली बोतल का वायु तभी खीचें, जब कि दाँया स्वर चलता हो तथा दाँयी नासा से ही वायु खींचनी उचित है। यदि बाँया स्वर चल रहा हो तो उसे रोककर दाँया स्वर चलालें। इसका उपाय यह है कि बाँयी करवट से धरती पर लेट जाँय तो दाँया स्वर चलने लगेगा। क्योंकि जिधर का स्वर चलाना हो, उसके विपरीत करवट लेकर लेटने से चल सकता है। लाल बोतल से वायु खींचने का भी यही नियम है।

नीली, आसमानी या हरी बोतल से वायु खींचने का नियम यह है कि उस समय जिधर का स्वर चल रहा हो, उधर की नासिका से ही वायु खींच कर दूसरी ओर से निकालें।

इस प्रकार वायु-पान की क्रिया नित्य प्रति चार बार करनी चाहिए। यदि इसके साथ उसी रङ्ग की बोतल का पानी भी सेवन किया जाय तो रोग का निवारण शीघ्र हो सकता है।

वायु-पीने अथवा जल पीने की विधि का प्रयोग सामान्यतः दिन में चार बार किया जाता है। परन्तु, रोग की स्थिति देखकर उसे कम या अधिक बार भी प्रयोग कर सकते हैं। ध्यान रहे कि रङ्ग की मात्रा आवश्यकता से अधिक नही पहुँचनी चाहिए, अन्यथा हानि की सम्भावना रहती है। यही बात बहुत कम मात्रा के विषय में भी है कि कम मात्रा लेने से लाभ नहीं हो पाता।

रश्मि-सिद्ध घृत और तैल

रंगीन घृतों का उपयोग

रङ्गीन घृत भी मुख के द्वारा सेवन किया जा सकता है। जिस प्रकार आयुर्वेदिक चिकित्सा में सेवनीय घृतों का प्रयोग लाभकर माना

गया है, विशेष कर जीर्ण रोगों में, उसी प्रकार इसकी भी कुछ बूँदें बिना किसी अनुपान के अथवा गो-दुग्ध में हल करके सेवन कर सकते हैं।

यह घृत चौड़े मुख की अपेक्षित रङ्ग की शीशी में गोघृत डालकर धूप में रखने से बनता है। जैसे, जिस रोग पर जिस रङ्गीन जल का प्रयोग किया जाता है, वैसे ही उस रोग पर, उस रङ्ग के घी का प्रयोग करना चाहिए।

यह घृत मुख के छालों में फुरैरी से लगाया जा सकता है। हल्के नीले रङ्ग की बोतल में तैयार किया हुआ यह रङ्गीन घी मुख के छाले, मुख में जलन, कण्ठशोथ आदि में उपयोगी रहता है। यदि कण्ठ के बाह्य भाग में भी लगा दें तो अधिक लाभ कर सकता है।

यदि सिर में दर्द है तो भी आसमानी रङ्ग के घी को दर्द के स्थान पर चुपड़ देना चाहिए। दोनों कनपटियों पर भी घृत चुपड़कर हाथ के अँगूठे से धीरे-धीरे मलना चाहिए। इससे दर्द में शीघ्र लाभ हो सकता है।

मस्तिष्क दौर्बल्य में गहरे नीले रङ्ग की बोतल में सिद्ध घृत को मस्तक पर, विशेष कर कपाल रन्ध्र पर मलना उचित है। इस प्रकार की मालिश मस्तिष्क को सुदृढ़, सशक्त बनाती और दिमागी ताजगी प्रदान करती है। जो लोग मस्तिष्क-सम्बन्धी कार्यों को करते हैं, जैसे अध्यापक, वकील, डाक्टर आदि, उनके लिए इसकी मालिश बहुत उपयोगी रहती है।

यदि स्नायविक अशक्तता है अथवा रीढ़ की अस्थि में किसी प्रकार की वेदना प्रतीत होती है, तो भी नीले रङ्ग के घृत की मालिश ही उपयुक्त रहती है। इससे स्नायविक शक्ति का ह्रास रुकता और हड्डियों में होने वाला दर्द भी मिट जाता है।

नेत्र रोगों में आसमानी रंग की बोतल का घृत काम में लाया जा सकता है। इससे नेत्रों में खुजली, जलन, अश्रुपात, रक्तवर्णता आदि में शीघ्र लाभ होता हैं। यदि रोहे पड़ गये हों तो भी इसका प्रयोग कर सकते है।

एक अनुभवी विद्वान् के मतानुसार रोहे बाँये नेत्र में हो तो हीं आसमानी रंग के घृत का प्रयोग उचित होता है, दाँये नेत्र में हों तो आसमानी रंग के स्थान पर नारंगी रंग की बोतल का घी प्रयोग में लाना चाहिए। यदि दोनों ही आँखों में हों तो बाँयी आँख में आसमानी रंग का और दाँयी आँख में नारंगी रंग का घृत लगाना उचित है।

इसी प्रकार इस घृत का प्रयोग मोतियाबिन्द आदि में भी किया जा सकता है। यदि कोई रोग न हो तो भी इसे नित्य रात्रि में शयन समय चाँदी की सलाई से लगाते रहना चाहिए। ऐसा करने से नेत्रों की ज्योतिवृद्धि होने लगेगी।

नेत्रों की सामान्य अवस्था में हरी बोतल में तैयार किया गया घृत अधिक उपयोगी माना गया है। इससे तुरन्त शान्ति प्रतीत होने लगती है तथा यदि खड़का आदि हो तो वह भी दूर हो जाता है।

यदि सर्दी से शरीर दुखता हो अथवा जोड़ों में आमवात आदि का दर्द हों तो उस पर लाल बोतल का घी मलना उपयोगी रहता है। ध्वजभंग (उपस्थ के अशक्त और टेढ़े पड़ जाने के) रोग में भी इसे लगाने से लाभ सम्भव है।

लकुआ के रोगी के शरीर पर पीली बोतल के घृत की मालिश करने से रोग कम होता है। उपस्थ की अशक्तता में भी इसे वाह्य रूप से लगाया जा सकता है।

बैंगनी रंग की बोतल में बनाये हुए घृत को घाव आदि पर लगा सकते हैं, क्योंकि वह विषाक्त कीटाणुओं को नष्ट करने वाला अर्थात् एन्टी सेप्टिक होता है। इसके प्रयोग से घाव भी स्वतः भरने लगता है।

इस प्रकार विभिन्न प्रकार की बोतलों में पृथक्-पृथक् रूप से बनाया हुआ घृत विभिन्न रोगों को नष्ट करने में उपयोगी होता है। यथा सम्भव इन घृतों का निर्माण गाय के घृत से ही करना चाहिए। यदि गाय का घी उपलब्ध न हो सके तो भैंस के घी से भी काम चलाया जा सकता है।

तैयार हुए घृत को सुरक्षित रूप से रखें तो बहुत समय तक खराब नहीं होता। परन्तु, यह ध्यान रखना आवश्यक है कि उस पर अन्य रंग की बोतल की छाया (रिफ्लेक्शन) न पड़े।

रंगीन तैलों का प्रयोग

वाह्य प्रयोग के लिए तैल अधिक प्रभावशाली रहते हैं। यह घृत से भी अधिक लाभकारी और गुणप्रद सिद्ध हुए हैं। परन्तु ऊपर बतायी हुई प्रयोग विधि में घृतों से कार्य लेना ही अधिक उपादेय रहता है।

आसमानी रंग का तैल

आमवात की तीव्र पीड़ा और शरीर शोथ, खुजली, दाद और व्रण, कण्ठमाला या प्लेग आदि की गिल्टी, अण्ड वृद्धि, ववासीर के अथवा अन्य किसी प्रकार के मस्से, शोध और असह्य दर्द युक्त फोड़े अथवा बद या बालतोड़ आदि, मधुमक्खी, बर्रं (ततैया) या बिच्छू आदि के काटने की न सहन होने वाली जलन तथा वह शोथ जो स्पर्श में कड़ी और गर्म प्रतीत हो, इन सबके शमनार्थ हल्के नीले (आसमानी) रंग की बोतल में बनाया हुआ तैल मलने से शीघ्र लाभ होता है।

आसमानी रङ्ग के तैल से दिमागी कमजोरी दूर होती है और नेत्रों की दर्शन शक्ति बढ़ती है। कनपटियों में दर्द, सिर-दर्द, गर्दन में दर्द आदि विकारों में भी इसकी मालिश करनी चाहिए। रीढ़ की अस्थि पर मलने से स्नायुओं की कमजोरी दूर होने लगती है।

शिर के बाल टूटते हों, श्वेतता आने लगी हो, गंज या रूखापन उत्पन्न होगया हो तो भी इसी रङ्ग का तैल लगाना लाभप्रद रहता है। इससे शिर या केशों में लगाने पर बालों का टूटना रुक जाता है, सफेदी मिटने लगती है तथा केश-वृद्धि के साथ उनमें कोमलता और शीतलता आने लगती है।

यह तैल प्रतिश्याय (जुकाम) को दूर करने में भी उपयोगी है। आवश्यक होने पर शिर और माथे पर मलना और नाक से सूँघना

होता है। जुकाम के कारण आँख, नाक से बहने वाला पानी भी इस प्रकार रुक जाता है।

हनु स्तम्भ, ग्रीवा स्तम्भ आदि विकारों में भी इसके लगाने से लाभ होता है। कमर और घुटनों के दर्द में प्रभावित स्थान धीरे-धीरे मलना चाहिए। अधिक कार्य करने से हाथों या हथेलियों एवं पाँवों में होने वाले दर्द में भी इसकी मालिश से लाभ होता है।

हृदय की दुर्बलता में इसे हृदय पर मलने से लाभ होता है। अस्वाभाविक धड़कन और उच्च रक्तचाप को नियमित करने के लिए भी इसे धीरे-धीरे हृदय आदि स्थानों पर मलना उचित है। यदि अधिक परिश्रम के कारण या अधिक चलने अथवा ऊपर चढ़ने से श्वास फूलती हो तो भी इसका हृदय पर मलना हितकर रहता है।

यदि कोई उदर विकार हो, पेट में दर्द, अफरा, मलावरोध या पेचिश के कारण आन्त्र-शोथ का अनुमान हो तो इस तैल को पेट पर मलना चाहिए। इससे पेचिश, आन्त्र-शोथ या अन्यान्य उदर-दोषों में शीघ्र लाभ सम्भव है।

उष्णता के कारण होने वाले मूत्राशय-शोथ और उससे मूत्र का रुक-रुक कर उतरना, मूत्र में जलन अथवा ऐसे ही अन्य विकारों में पेडू पर इस तैल की मालिश करने से लाभ होता है। शुक्रदोष में भी यहीं इसकी मालिश करना हितकर है।

जिन स्त्रियों के मासिक धर्म में गड़बड़ी, पेडू में दर्द, रजःस्राव आदि हो तो उनके भी पेडू पर ही मालिश की जाय। इससे गर्भस्राव आदि में भी लाभ होता है।

हिस्टीरिया, मृगी या किसी प्रकार का बेहोशी उत्पन्न करने वाला मानसिक रोग हो तो रोगी के पेडू पर और कपालरन्ध्र पर भी हल्के हाथ से मालिश करनी चाहिए।

इस प्रकार आसमानी रङ्ग की बोतल से बनाया हुआ तैल अनेक विकारों को दूर करने में उपयोगी है। सिर में मालिश करने के लिए

जो तैल बनाया जाय उसका बादाम रोगन से बनाया जाना अत्यधिक हितकारी रहता है। क्योंकि बादाम रोगन मस्तिष्क की थकान दूर करने या हिस्टीरिया आदि की बेहोशी दूर करने में स्वतः ही बहुत उपयोगी होता है। उसे मलने से ज्वर की तेजी भी कम होने लगती है। किन्तु जब वह सूर्य की आसमानी किरण का संयोग प्राप्त कर लेता है, तब तो उसके गुणों में और भी वृद्धि हो जाती है।

केश-वृद्धि के उद्देश्य से, अथवा केश-श्वेतता या गंज आदि दूर करने के उद्देश्य से जिस आसमानी तेल का प्रयोग किया जाय, वह नारियल तैल पर बना हो तो अधिक उत्तम है।

लाल और नारंगी बोतलों का तैल

यह तैल पीली सरसों के तैल से तैयार करने से अधिक लाभकारी होती है। पीली सरसों के अभाव में श्वेत तिल्ली के तैल से बना सकते हैं। यदि वह भी न मिले तो बाजार में जैसा भी तैल उपलब्ध हो सके, वैसे से ही काम चला सकते हैं। इसे २-३ घंटे धूप में रखकर काम में ला सकते हैं।

यदि सर्दी अथवा चोट-मोच आदि का नया या पुराना दर्द है तो दर्द के स्थान पर इस तैल को लगाकर मालिश कीजिए, इससे सब प्रकार के ऐसे दर्दों में शीघ्र लाभ होता है।

यदि कड़ा फोड़ा हो, फूटने में न आता हो, किन्तु उसमें अधिक वेदना हो तो, उस पर उक्त तैल फुरैरी से लगाना चाहिए। ऐसा करने से यदि फोड़ा बैठने योग्य होगा तो बैठ जायगा, अन्यथा पक कर फूट जायगा। सब प्रकार की गिल्टियों पर इसका प्रयोग कर सकते हैं।

पुराने आमवात का घुटने आदि स्थानों में दर्द या सूजन हो तो भी इस तैल की मालिश की जाय। लकुए द्वारा प्रभावित हुए अङ्ग पर भी इसकी मालिश से लाभ हो सकता है।

कान के दर्द और कान के बहने में भी इसका उपयोग है। परन्तु,

इसका प्रयोग वांये कान के विकारों में ही करना चाहिए। रात्रि में सोते समय इस तैल की २-३ बूंदें बांये कान में डालना पर्याप्त रहेगा। यदि दाँया कान बहता हो तो उसमें हरा तैल डालें।

उपस्थ के अल्प या कृश होने में भी इस तैल का लगाना लाभदायक है। क्योंकि यह तैल इस प्रकार के अंगों की वृद्धि में सहायक होता है। यदि तैल को उपस्थ पर धीरे-धीरे मल कर उसे धूप में १५-२० मिनट नित्य प्रति रखें तो उसकी शिथिलता भी दूर हो जाती है।

कमर में या उससे नीचे के किसी भाग में दर्द होता हो तो भी इस तैल का लगाना हितकर है। खुजली, कुष्ट आदि में क्षत हो जाने से यदि दर्द हो तो इसी तैल को लगाना चाहिए।

निमोनिया में पसली-छाती के दर्द को दूर करने में भी यह तैल बहुत लाभदायक है। दर्द को शीघ्र दूर कर देता है। परन्तु, इसकी मालिश हृदय पर नहीं करनी चाहिए, पसली आदि पर ही की जाय।

नारंगी रङ्ग की बोतल में बने हुए तैल के भी यही गुण हैं। परन्तु इससे लाभ कुछ कम और विलम्ब से होता है। इसलिए रोग की सामान्य या प्रारम्भिक अवस्था में नारङ्गी रंग का तैल प्रयुक्त करना अधिक लाभप्रद है।

पीले रंग की बोतल का तैल

यदि इसे पीली सरसों के तैल से बनाया जाय तो अधिक हितकर होता है। उदर रोगों में इसकी मालिश पेट पर करनी चाहिए। मलावरोध को दूर करने में भी यह उपयोगी है।

मस्तिष्क की सामान्य निर्बलता में यह तैल लाभदायक है। इसके मलने से बुद्धि तीव्र होती है और मानसिक दुर्बलता दूर हो जाती है।

हरे रंग की बोतल का तैल

यह तैल धुली हुई श्वेत तिली, सरसों या गोला के तैल से बनाना चाहिए। इसे मस्तिष्क दौर्बल्य में प्रयोग करना अधिक लाभदायक है।

यदि बाल टूटने या सफेद होने लगे हों, तो इस तैल की मालिश से शीघ्र लाभ होने लगता है। दाँये कान में दर्द हो या वह बहता हो तो इसी तैल को डालना चाहिए।

त्वचा का रूखापन, खुजली, दाद, छाजन, घाव आदि में भी इस तैल को लगाने से शीघ्र लाभ होता है। त्वचा की विवर्णता दूर होती और कोमलता आ जाती है।

मुख के झाँई-मुँहासे आदि में भी इस तेल का प्रयोग किया जाना उचित रहता है। मुख की श्यामता या विवर्णता को दूर करने के उद्देश्य से इस तैल की धीरे-धीरे मालिश करनी चाहिए।

यदि घाव आदि में पीव या रक्त निकलता हो तो उसमें लगाने के लिए हरे रङ्ग का तैल अलसी के तैल पर बनाया जाना अधिक उचित रहता है। यदि अलसी के तैल का अभाव हो तो चाहे जिस तैल का प्रयोग कर सकते हैं।

बैंगनी रंग की बोतल का तैल

धुली हुई श्वेत तिली या नारियल के तैल पर बनाना अधिक उत्तम है। अभाव में सरसों के तैल से भी बना सकते है। इसमें लाल और नीले के मिले जुले गुण रहते हैं।

वेदना युक्त एवं गिल्टीदार कड़े फोड़े पर इससे शीघ्र लाभ होता है। यह फोड़े को बैठाने या पकाने में उपयोगी है। फोड़े के स्थान पर फुरेरी से लगाना चाहिए।

शरीर में बेचैनी के साथ मामूली दर्द हो, त्वचा फटी-फटी-सी या रूखी हो, उसमें खाज या जलन होती हो तो यही तैल लगाने से लाभ हो सकता है।

दाद पर भी इसे लगाया जा सकता है। पुराने दाद में होने वाली जलन युक्त खुजली में इसके लगाने से चैन पड़ जाता है। परन्तु दाद

पर इसे लगाने से पहिले आरने ऊपले से उस स्थान को खुजा लेना चाहिए।

गठिया की आरम्भिक अवस्था में भी इस तैल से काम लिया जा सकता है। यदि जोड़ों में तीव्र दर्द हो तो इस तैल को लगाने और इसी रङ्ग का पानी पीने से लाभ सम्भव है।

जुकाम आदि की सामान्य अवस्था में इसे सूँघें और कनपटियों पर लगावें। यदि गले में दर्द हो तो ग्रीवा के बाह्य चर्म पर पर अँगूठा और अँगुलि के सहयोग से थोड़ा-सा तैल मलें। इस क्रिया से शीघ्र लाभ हो सकता है।

बैंगनी रङ्ग में लाल और नीले का मिश्रण होता है। यदि लाल की अधिकता होती है तो हल्का बैंगनी बनता है। उसमें लाल रंग के गुणों का अधिक समावेश रहता है।

यदि बैंगनी रंग में नीले रंग की अधिकता होती है तो गहरा बैंगनी बन जाता है। उसमें नीले रंग से प्राप्त होने वाले गुण प्रधान रूप में रहते हैं।

इस प्रकार रोग और रोगी की अवस्था आदि पर ठीक प्रकार विचार करते हुए तैल के रंगों के गुण-दोषों पर विचार-पूर्वक उनका प्रयोग करने से लाभ होता है। बिना विचारे ही जल्दबाजी में किये जाने वाले प्रयोग से हानि हो सकती है। इसलिए विचार करके ही चिकित्सा-व्यवस्था की जानी चाहिए।

रंगीन पानी और उसके लाभ

पीली बोतल का पानी और उसके गुण

इसके प्रयोग से शरीर के किसी भी मार्ग से जाने वाला रक्त रुक जाता है। मुख से रक्त गिरता हो तो उसे रोकने के लिए पीली बोतल

का जल लगभग दो-ढाई तोले की मात्रा में प्रातः-सायं दोनों बार देना चाहिए। यदि आवश्यक हो तो इसकी मात्राएँ दिन भर में चार-पाँच बार दी जा सकती हैं। साथ ही पीली बोतल से वायु-पान किया जाय तो अधिक लाभ कर सकता है।

यदि खूनी दस्त हों तो भी पीली बोतल का पानी ३-३ घण्टे के अन्तर से देना उचित है। साथ ही पेट पर पीली बोतल का तैल धीरे-धीरे मलना चाहिये।

यदि व्यायाम न करने से शरीर में सुस्ती, बदहज़मी, उदरशूल, अफरा या मलावरोध हो तो भी पीले रङ्ग के तैल की उदर पर मालिश की जाय और पीली बोतल से सिद्ध हुआ जल दिन में तीन बार सेवन किया जाय तो लाभ हो सकता है। क्योंकि यह सुख विरेचक (हल्का दस्तावर) होता है।

कण्ठमाला के रोगी को पीली बोतल का पानी पीना और पीला या लाल तैल लगाना चाहिए। अन्य प्रकार की गिल्टियों पर भी इसी का प्रयोग कर सकते हैं।

मधुमेह में जब शर्करा जाने लगती है और यदि किसी प्रकार का कोई घाव हो जाता है तो पीली बोतल का पानी दिन में चार बार सेवन करना उचित रहता है। कभी-कभी प्रमेह में भी इससे लाभ हो जाता है।

जिन्हें पक्षाघात की शिकायत हो अथवा शरीर में वायु का दर्द होता हो, उन्हें भी पीले रङ्ग की बोतल का जल दिन में तीन-चार बार पीना चाहिए और आक्रान्त भाग पर पीले रङ्ग की बोतल के तैल की मालिश करनी चाहिये।

यकृत और प्लीहा के विकार या दौर्बल्य में भी पीले रङ्ग का पानी लाभदायक रहता है। साथ ही यकृत और प्लीहा के वाह्य भाग पर पीले तैल की ही मालिश की जाय।

लाल बोतल के पानी के गुण

यह पहले भी बता चुके हैं कि लाल रङ्ग अधिक गर्म होता है। इसलिए यह शिथिल अङ्गों में उष्णता या शक्ति उत्पन्न करने में अधिक हितकर रहता है। इससे निर्बलता और उत्साह का अभाव आदि विकार दूर होने में बड़ी सहायता मिलती है।

रक्त-संचार में बड़बड़ी होने से अनेक दोष उत्पन्न होकर रक्त भी कम हो जाता है। उस अवस्था में इसे दिन में दो बार २-२ तोले की मात्रा में देने से ही काम चल जाता है। वह भी दोनों समय भोजनोपरान्त ही दी जानी चाहिए, जिससे कि खाया हुआ अन्न भी शीघ्र पच जाता है। इस प्रकार पाचन शक्ति सुधरने से भी निर्बलता दूर होती और रक्त की वृद्धि होने लगती है।

निर्बल और कृश शरीर वालों को इसका सेवन अधिक उपयोगी होता है। किसी भी कारण से रुकी हुई पोषण क्रिया पूर्ववत् कार्य करने लगती है और कुछ दिनों में ही इसका सेवन करने वाला मनुष्य हृष्ट-पुष्ट होने लगता है।

वृद्ध पुरुषों के लिए तो यह वरदान स्वरूप ही समझिए, उनमें जिस कार्यक्षमता का अभाव हो जाता है, वह इस पानी के सेवन से शीघ्र प्राप्त हो सकती है।

शीत के कारण हाथ-पाँवों में अकड़न, जोड़ों में दर्द अथवा बाहु-स्तम्भ, पद स्तम्भ या शोथ आदि होगई हो तो उसे भी लाल रङ्ग का पानी पीने को दें और प्रभावित अङ्ग पर लाल बोतल में सिद्ध किये हुए तैल की मालिश करें। यदि इस उपचार के साथ ही पीले रङ्ग का प्रकाश भी डाला जाय तो अधिक उपयोगी रहेगा।

शरीर में आलस्य, कार्य में चित्त न लगना, उत्साह की कमी, हाथ-पांव का ठण्डे रहना आदि दोषों में भी लाल रङ्ग का जल सेवन करें और शरीर पर लाल प्रकाश डालें।

यदि मोतीझला या चेचक निकल कर दब जाय, दाने ठीक प्रकार से

न निकले हों, तो उस रोगी को १-२ बार लाल रङ्ग का पानी पिलाना चाहिए। उससे दाने ठीक प्रकार से निकल आते हैं। परन्तु, दाने ठीक प्रकार निकल आने पर तुरन्त लाल रङ्ग का पानी वन्द करके आसमानी रङ्ग का पानी देना उचित होगा।

स्त्रियों के मासिक विकार, पेड़ू में दर्द, कष्टार्त्तव, नष्टार्त्तव, विलम्ब से रजोधर्म आदि विकारों में लाल पानी के प्रयोग से शीघ्र लाभ होता है।

जो लोग अधिक स्थूल (मोटे) शरीर के हों और वे अपना मोटापा कम करना चाहें तो उन्हें भी लाल रङ्ग का जल पीना और लाल काँच का प्रकाश ग्रहण करना चाहिए।

श्वेत कुष्ट के दाग भी लाल रङ्ग के पानी पीने से दूर हो जाते हैं। साथ ही दागों के स्थान पर लाल रङ्ग के कांच का प्रकाश भी डालना चाहिए। ऐसा करने से लाल अणु अधिक बनने लगते और दाग दूर हो जाते हैं।

अण्डवृद्धि या फीलपाँव प्रभृति रोगों में भी लाल पानी का उपयोग उचित रहता है। साथ ही उन स्थानों पर लाल रङ्ग के काँच से प्रकाश डालना भी हितकर है।

यदि निर्बलता, अपौरुष, कृशता आदि में लाल रङ्ग के पानी का प्रयोग करें तो कभी-कभी कस्तूरी, केशर आदि के द्वारा मिलने वाली पौष्टिकता से भी अधिक हित साधन हो जाता है।

लाल रङ्ग की बोतल का पानी शरीर में अधिक चंचलता और उत्तेजना उत्पन्न करता है। क्योंकि उससे रक्त की गति में तीव्रता आने लगती है। परन्तु, इस रङ्ग के पानी का सेवन कम ही करना उचित है। बहुत आवश्यक होने पर लगभग दो-दो तोले की मात्राएँ दोनों बार भोजन के बाद देनी चाहिए।

परन्तु, १५-१६ वर्ष से कम आयु के किशोरों को लाल रङ्ग का प्रयोग हानिकारक रहता है। इसलिए यदि उन्हें लाल रङ्ग देना आव-

श्यक ही हो तो उसमें पीले रङ्ग का भी मिश्रण किया जाय। अभिप्राय यह है कि उन्हें लाल रङ्ग के स्थान पर नारङ्गी रङ्ग देना चाहिए।

नीली बोतल का पानी और उसके गुण

नीले रङ्ग का अभिप्राय यहाँ गहरे नीले रङ्ग से है, जिसमें अत्यल्यांश में लाली की झलक मारती है। इस रङ्ग की शीशियाँ बाजार में सरलता से प्राप्त हो जाती हैं।

इस रङ्ग की बोतल का पानी क्षय रोग की प्रारम्भिक अवस्था में बहुत हितकर सिद्ध हुआ है। क्षय-रोगी के सभी विकार—सूखी या रक्त-मिश्रित खाँसी, श्वास का विकार, पतले दस्त या दस्तों की अधिकता, हल्के ज्वर के साथ बेचैनी और कभी-कभी ज्वर का तेज हो जाना आदि विकारों में नीले रङ्ग की बोतल का पानी दिन में चार बार ढाई-ढाई तोले की मात्रा में देना चाहिए। मात्रा का क्रम इस प्रकार रखें कि एक-एक मात्रा प्रातः और रात्रि में शयन के समय और दो मात्राएँ दोनों बार भोजन के पश्चात्। इससे शीघ्र लाभ होने लगता है और रोग-वृद्धि नहीं हो पाती।

काली खाँसी या कुकर खाँसी के रोगी को भी इससे बहुत लाभ पहुंचता है। शुष्क कास, जिनमें कफ बहुत कठिनाई से निकल पाता है अथवा श्वास रोग से परेशान रोगियों को भी नीली रङ्ग की बोतल के पानी का दिन में चार बार सेवन करना चाहिए।

फुफ्फुस के विकारों में भी यह उपयोगी है। फेफड़ों के शोथ या उनमें जल भर जाने (प्लूरिसी आदि) में भी इसका दिया जाना अत्यन्त लाभकारी है। दिन में चार मात्रा जल पिलावें और फेफड़ों के भाग पर नीले काँच का प्रकाश डालें तो शीघ्र लाभ हो सकता है।

कण्ठ में छाले, जलन, श्वास-नलिका प्रदाह, कण्ठशोष या कण्ठ शोथ में भी नीली बोतल का जल सेवन कराना और कण्ठ पर नीला प्रकाश डालना हितकर होता है।

जीर्ण ज्वर या मन्द ज्वर के रोगी को देने से ज्वर का पाचन होता है और ज्वर तेज हो इसके सेवन से उसकी तेजी कम होने लगती है।

यदि वमन और दस्त हो रहे हों, हैजे जैसी अवस्था हो अथवा वमन-दस्त के साथ ज्वर भी हो तो उस दशा में केवल इसी जल का प्रयोग ३-४ बार कराने से लाभ सम्भव है।

आँतों की निर्बलता या खुश्की के कारण मलावरोध हो तो इसके सेवन से आँतों में उत्तेजना आती और मल साफ उतरने लगता है।

कमजोर और कृश शरीर के मनुष्यों, विशेषकर वृद्धों के लिए नीले रङ्ग का पानी उत्तेजक होने के कारण बल और स्फूर्ति का संचार करने वाला है। जो लोग धातु-क्षय के कारण निर्बल और उत्साहहीन होगए हों उनके लिए भी इससे लाभ प्राप्त हो सकता है।

निमोनिया में भी इसका प्रयोग निरापद रहता है। उसकी विषमावस्था दूर होकर नियन्त्रण में आ जाती है। यदि छाती-पसली आदि में दर्द और बेचैनी हो तो जल-सेवन के साथ-साथ प्रभावित अङ्गों पर नीले काँच का प्रकाश डालना भी उचित होगा।

अम्लपित्त, अजीर्ण, उदर-शूल आदि में भी नीली बोतल का पानी पिलाना लाभप्रद होता है। परन्तु पुराने रोगों में रोगी को धैर्य पूर्वक उपचार की आवश्यकता होती है।

आसमानी बोतल के पानी के गुण

इस रङ्ग को सभी रङ्गों में अधिक उपयोगी माना गया है। इसमें प्राणियों के लिए जीवनदायिनी शक्ति भरी पड़ी है। यह रङ्ग शीतल होने के कारण अधिक शान्तिदायक है तथा गर्मी का विशेष रूप से शमन करने वाला है।

शरीर में उष्णता-वृद्धि के कारण अथवा पित्त दोष के प्रकोप से दाह और व्याकुलता उत्पन्न होगई हो, उस अवस्था में रोगी को केवल प्रातः-साय दो बार ही नित्य प्रति आसमानी बोतल का पानी देना चाहिए। अधिक आवश्यक होने पर ३-४ बार भी दे सकते हैं। परन्तु

भोजन से पहिले या भोजन के एक घण्टे बाद तक कोई मात्रा न दी जाय।

हैजा और उसके सभी उपद्रवों—वमन, दस्त और प्यास के साथ मूत्रावरोध और शरीर के ऐंठने आदि अवस्थाओं में आसमानी बोतल का जल बहुत हितकर रहता है और स्थिति में इसकी मात्राएँ जल्दी-जल्दी देनी होती हैं। ज्यों-ज्यों रोग काबू में आता जाता है, त्यों-त्यों दवा देने के अन्तर में देर कर देनी चाहिए।

परन्तु हैजा की अन्तिम अवस्था में शरीर ठण्डा पड़ने लगा हो तो उस समय लाल रङ्ग की कमी होना समझा जाता है और तब रोगी को लाल रङ्ग की बोतल का पानी देना आवश्यक होता है। उस स्थिति में आसमानी बोतल का पानी तुरन्त बन्द कर देना चाहिए।

आँव या आँव-खून के दस्तों में आसमानी रङ्ग की बोतल का जल बहुत लाभकारी होता है। इसकी ४-५ खुराक में ही ऐंठन और दर्द की बेचैनी दूर हो जाती है।

पतले दस्तों में भी इस रङ्ग का जल लाभ करता है। पेशाब का पीलापन दूर होता है और ज्वर की तेजी कम होने लगती है। इसलिए ऐसे रोगी को इस जल की दो-ढाई तोले की मात्रा प्रत्येक तीन-तीन घण्टे के अन्तर से देनी चाहिए।

स्त्रियों के योनि रोगों और पुरुषों के जननेन्द्रिय के विकारों में आसमानी बोतल का पानी शीतवीर्य औषधि का काम देता है। प्रदर, प्रमेह दोनों में ही यह उपयोगी है।

स्त्रियों की गर्भावस्था में वमन होना, जी मिचलाना आदि इससे दूर होता है। योनिशोथ में भी आसमानी बोतल का जल हितकर रहता प्रसूति काल के अनेक विकार एवं सूतिका ज्वर आदि में भी इसे सफलता पूर्वक प्रयुक्त कर सकते हैं।

ज्वरातिसार का भी यह एक श्रेष्ठ उपचार है। पित्त ज्वर भी

इसके द्वारा ठीक होता है। इसके साथ होने वाले दाह, प्यास आदि उपद्रवों का शमन भी इस जल के प्रयोग से हो सकता है।

प्लेग आदि गिल्टियों पर भी इसका प्रयोग उपयोगी होता है। सभी प्रकार की गिल्टियों में आसमानी बोतल का जल पीने को दें और इसी जल में वस्त्र भिगोकर उसकी गद्दी बनावें और गिल्टियों पर रख दें।

माता या मोतीझला के दाने ठीक प्रकार से न निकलें या मुर्झा जाँय तो लाल रङ्ग के पानी की एक-दो मात्रा देने से वे पुनः ठीक प्रकार से निकल आते हैं। इसके बाद आसमानी बोतल का पानी देने से रोग पच कर रोगी ठीक हो जाता है।

यदि बर्र, बिच्छू, मधुमक्खी आदि काठ ले तो उस पर आसमानी रङ्ग की बोतल के जल में वस्त्र भिगोकर उसकी गद्दी दंश स्थान पर रखें और उस पर आसमानी काँच का प्रकाश डालें।

ज्वरातिसार के कारण अधिक निर्बलता, तन्द्रा, मूर्च्छा या प्रलाप की अवस्था हो तो रोगी को आसमानी बोतल का जल पिलावें और इसी रङ्ग का प्रकाश दें। फिर कुछ सान्त्वना प्रतीत होने पर आसमानी रङ्ग की बोतल में एक-दो उबाल का दूध भर कर १५-२० मिनट धूप में रखें और रोगी को थोड़ा-थोड़ा करके पिलावें इससे रोगी के शरीर में शक्ति बढ़ती और रोग में भी लाभ होता है।

ज्वरावस्था में बेचैनी से हाथ-पाँव पटकना, चित्त की व्याकुलता, सिर-दर्द, कनपटी में हड़कल, शरीर में हड़फूटन आदि उपद्रवों में भी आसमानी बोतल का जल देने से लाभ हो सकता है।

नेत्र-दुःखना, भौंहों में दर्द, माथे में भारीपन या ग्लोकीमा का तीव्र दर्द आदि विकार आसमानी बोतल के जल से शीघ्र ठीक हो सकते हैं।

लाल रङ्ग के अधिक सेवन से अथवा लाल रङ्ग की ऊष्मा सहन न कर पाने से उत्पन्न विकारों के शमनार्थ भी आसमानी रङ्ग का जल पिलाना या जल में भिगोई हुई गद्दी रखना तथा आसमानी प्रकाश डालना अधिक हितकर रहता है।

नारंगी बोतल का पानी और उसके गुण

नारङ्गी रङ्ग का पानी भी अपनी एक विशेषता रखता है। यह रङ्ग महिलाओं की अपेक्षा पुरुषों के लिए अधिक हितकर होता है और पुरुषों के कई रोगों को दूर करने में सहायक होता है।

परन्तु, जिन व्यक्तियों को जीर्ण मलावरोध रहता हो, वे चाहे स्त्री, पुरुष, वृद्ध, बालक कोई भी क्यों न हों, उनके लिए नारङ्गी रङ्ग की बोतल का पानी समान रूप से उपयोगी होता है। यह आमाशय और आँतों में जमे हुए मल को ढीला कर-करके धीरे-धीरे निकाल देता है। परन्तु इस जल का सेवन दिन में ३-४ बार करना ही पर्याप्त रहता है। यदि धैर्य पूर्वक इसका सेवन करते रहें तो जीर्ण मलावरोध अवश्य दूर हो सकता है।

जो लोग अधिक चलते-फिरते या परिश्रम नहीं करते, वरन् उनका कार्य अधिकतर गद्दी या कुर्सी पर बैठे रहना ही है, वे अनेक प्रकार के उदर विकारों से पीड़ित हो जाते हैं। उनके लिए भी नारङ्गी बोतल के पानी का उपयोग कम नहीं है। परन्तु, ऐसी अवस्था में यह भोजनोपरांत दोनों बार लिया जाना चाहिए। बहुत आवश्यक हो तो तीन बार ले सकते हैं।

कुष्ठ आदि चर्म रोगों में भी इससे बहुत लाभ होता है। रोगी को नारङ्गी रङ्ग की बोतल का पानी पिलावें तथा उसी पानी में रुई भिगोकर कुष्ठ के स्थान पर रखें और नारङ्गी रङ्ग का प्रकाश डालें। आवश्यक होने पर नारङ्गी रङ्ग की बोतल में बनाया हुआ तैल भी लगा सकते हैं। यदि धैर्य पूर्वक इस चिकित्सा का आश्रय लिया जाय तो अवश्य लाभ हो सकता है।

शरीर की विवर्णता दूर करने में भी इसका उपयोग होता है। श्वित्र आदि के धब्बे भी इसके द्वारा दूर हो जाते हैं। जिस स्थान की त्वचा श्वेत पड़ गई हो, उस पर नारङ्गी प्रकाश डालें और नारङ्गी रङ्ग की बोतल का जल सेवन करें। इससे शरीर का वर्ण समान रूप से सुन्दर हो जाता है।

इसके सेवन काल में दस्त साफ आने लगता है, कब्जियत नहीं रहती। किन्तु यदि रोगी को दस्त होने लगें तो इसकी मात्रा कम कर देनी चाहिए। पथ्य में चने की अथवा गेहूँ-चने की मिश्रित रोटी असली घी के साथ खिलायें। कुष्ट आदि चर्म रोगों में चने की घृत युक्त रोटी लाभदायक रहती है। परन्तु दूध, दही, चावल, खटाई, लाल मिर्च आदि का सेवन नहीं करना चाहिए।

जुकाम, खाँसी, नजला, शीत ज्वर, विषय ज्वर, वक्षस्थल का प्रदाह, फुफ्फुस प्रदाह या फुफ्फुसों के अन्य दोष, आमाशय शूल, हिस्टीरिया, अरुचि, खट्टी डकारें आना आदि में भी इसका प्रयोग हितकर रहता है।

बेंगनी रंग की बोतल का जल

इसमें लाल और नीले रंग का मिश्रण होता है। शरीर में पीले, लाल या नारंगी रंग का अंश अधिक बढ़ जाने पर यदि ज्ञान तन्तुओं में कोई दोष उत्पन्न हो जाय, तब इस रंग के प्रयोग से उसमें लाभ होता है।

यह रंग शीतवीर्य, ग्राही एवं सूक्ष्म भेदक होने के कारण अधिक हितकर है। जब रोगी सन्निपात की अवस्था में पड़ा हो, प्रलाप करता करता हो या तन्द्रा ग्रस्त हो तो उस अवस्था में भी बेंगनी रंग की बोतल का पानी लाभदायक रहता है।

मूत्राधिक्य रोग (बहुमूत्र) में भी बेंगनी रंग की बोतल का जल बहुत हितकर रहता है। उसे दिन में चार बार तक आवश्यकतानुसार दे सकते हैं।

प्रमेह और मधुमेह आदि में भी इसका प्रयोग सफलता पूर्वक किया जा सकता है। इस प्रकार इस रंग से सम्बन्धित रोगों में इसे विचार पूर्वक प्रयुक्त किया जाना चाहिए।

हरे रंग की बोतल का जल

हरा रंग अत्यन्त शान्ति और शीतलताप्रद होता है। इसमें पीले-नीले

या पीले-आसमानी रंग का योग रहता है। इसलिए दोनों रंगों के गुणों से समाविष्ट है।

इसके द्वारा अनेक प्रकार के असाध्य फोड़े, कैंसर, नासूर आदि में भी लाभ हो सकता है। उस पर हरे रंग का प्रकाश डाला जाय और हरी बोतल का पानी पिलाना चाहिए।

यदि मस्तिष्क भारी हो, विकृत या असन्तुलित हो तथा काम करने में चित्त न लगता हो आदि विकारों में भी हरे रंग की बोतल का जल पिलाना चाहिए।

जिस रोगी को नींद न आती हो, चित्त व्याकुल रहता हो तथा प्यास और जलन आदि का अनुभव होता हो, उसे भी इस जल के सेवन से शीघ्र लाभ होता है।

आँख दुखनी आने या अन्यान्य नेत्र-विकारों में इससे बहुत लाभ प्रतीत होता है। खड़का मारने पर हरी रंग के बोतल के पानी में रुई भिगोकर आँखों को उससे धोवें और हरे रंग का प्रकाश ग्रहण करें। साथ ही हरी रंग के बोतल का पानी की २-३ मात्राएँ ली जाँय और हरा चश्मा लगाया जाय।

रश्मि-सिद्ध जल की मात्रा आदि

किरणों से जल-सिद्धि की विधि पीछे बतायी जा चुकी है। अब उसके सेवन करने के समय आदि के विषय में भी बताना आवश्यक है। यह ऐसा विषय है, जो कि सूर्य-चिकित्सा में सदैव ध्यान रखने योग्य है।

पीली बोतल का जल सामान्य रूप से तो प्रातःकाल कुल्ला-दाँतुन करने के पश्चात् लेना चाहिए। फिर दोनों बार के भोजनोपरान्त और तीसरे पहर लिया जाय। अच्छा तो यह है कि ऐसा क्रम बनाया जाय, जिससे कि रोगी को दिन भर में चार-चार घन्टे के अन्तर से चार खुराक मिल सकें।

लाल बोतल का जल कम प्रयोग में लाया जाता है, क्यों कि यह

शरीर पर अधिक गर्म प्रभाव डालता है। आवश्यक ही हो तो कफजन्य विकारों में भोजन के पश्चात् देना ठीक रहता है। वृद्धावस्था में जब क्रियाशीलता का अधिक ह्रास हो रहा हो, तब यह पानी वृद्ध पुरुषों को भी भोजन के बाद ही दिया जा सकता है।

गहरी नीली बोतल का जल अनेक दोषों को दूर करने में उपयोगी है। पित्त के विकारों और शिर-दर्द आदि में इसका प्रयोग हितकर माना जाता है। इसे चार-चार घन्टे के अन्तर से दिन में चार-पाँच बार तक दे सकते हैं।

आसमानी या कम नीली बोतल का जल अधिक ठण्डा माना गया है। इसे दिन में केवल दो बार प्रातः और रात्रि में शयन समय देने का विधान हैं। परन्तु भोजन करने के बाद कदापि सेवन न किया जाय, क्योंकि यह पाचन शक्ति को मन्द करने में सहायक होता है।

नारङ्गी बोतल का जल दर्द और बेचैनी आदि को दूर करने में तो उपयोगी है ही, अन्य विकारों में भी हितकर रहता है। इसे भी दिन में चार बार घन्टे के अन्तर से देना चाहिए। जिसमें दो खुराक दोनों बार भोजनोपरान्त दी जांय।

हरी बोतल का जल व्याकुल चित्त को शान्त और प्रसन्न करने में सहायक है। इससे शरीर की वेदना में भी लाभ होता है। इसका सेवन भी सामान्यतः दिन में चार बार अथवा आवश्यकतानुसार कम या अधिक बार भी किया जा सकता है।

सभी प्रकार के रंगीन जल की सामान्य मात्रा दो-ढाई तोले है। फिर भी रोगी और रोग की स्थिति के अनुसार कम-अधिक भी की जा सकती है। बालकों को लगभग एक तोले की मात्रा देनी चाहिए।

विभिन्न रोगों के उपचार

ज्वरों की सूर्य-किरणों से चिकित्सा

आयुर्वेद ने ज्वरों के अनेक प्रकार बताये हैं। आधुनिक चिकित्सक भी उनके विभिन्न भेद मानते हैं। ज्वर के कुछ प्रकार अब नये रूप में देखे जाते हैं। उन सब की चिकित्सा के लिए सर्व प्रथम उनके लक्षणों पर ध्यान देना चाहिए। यदि उसका ठीक प्रकार ज्ञान हो जाता है तो रोग के दूर होने में अधिक कठिनाई नहीं होती।

सूर्य-किरणों के द्वारा चिकित्सा करने वाले लोग ज्वरों की उत्पत्ति कारण ऊष्मा को मानते हैं। उनके मत में शरीर में गर्मी की अधिकता हो जाने पर ही ज्वर का प्राकट्य होता है। परन्तु, वस्तुतः बात ऐसी नहीं है, ज्वर उत्पन्न होने के अनेक कारण हैं, जिनमें ठण्ड से ज्वर आना तो प्रत्यक्ष रूप में देखा जाता है।

आयुर्वेद के मत में सभी रोगों की उत्पत्ति में प्रमुख कारण वात, पित्त और कफ का कुपित होना माना गया है। जो ज्वर वातदोष के कोप से उत्पन्न हो, वह वातज, पित्त दोष से हो वह पित्तज और कफ दोष से उत्पन्न हो वह कफज कहा जाता है। परन्तु, तीनों दोषों का सम्मिलित प्रकोप होने पर उसे त्रिदोषज या सन्निपातज कहते हैं। सामान्य रूप से इनके लक्षण इस प्रकार समझे जाते हैं—

वात ज्वर के लक्षण और उपचार

वातज ज्वर में ज्वर का वेग कभी कम रहता है, कभी अधिक। कण्ठ, ओष्ठ और मुख सूख जाते हैं तथा शरीर में रूक्षता, दाह, कपकँपी आदि लक्षण होते हैं। सम्पूर्ण शरीर में दर्द के साथ सिर दर्द की तीव्रता रहती है। हृदय में वेदना, पेट दर्द, अफरा, कब्ज, जँभाई आना तथा मुख का स्वाद बिगड़ जाना आदि लक्षण होते हैं।

इस ज्वर में नीली बोतल का ढाई-ढाई तोले पानी दिन में दो बार दिया जाय। अधिक आवश्यक हो तो तीन बार भी दे सकते हैं। परन्तु, भोजन के एक घन्टे पूर्व और एक घण्टे बाद तक इसका सेवन न करें। बालकों को एक तोले की मात्रा में दें। साथ ही सिर दर्द हो तो वहाँ नीला प्रकाश डालना चाहिए। आहार में रोगी को कुछ भी न दें अथवा दूध-फल का सेवन करावें।

पित्त ज्वर के लक्षण और उपचार

पित्त ज्वर में वेग की अधिकता रहती है, दस्त और वमन होने लगते हैं। मुख में कड़वापन, मुख-पाक, दाह, नासापाक, स्वेदाधिक्य, प्यासाधिक्य, नेत्र, त्वचा, निष्ठा और मूत्र में पीलापन, प्रलाप, भ्रम (चक्कर) और मूर्च्छा आदि प्रमुख लक्षण होते हैं।

इस ज्वर में आसमानी रङ्ग का जल ढाई-ढाई तोले की मात्रा में दिन में तीन-चार बार दे सकते हैं। बालकों को उनकी अवस्था के अनुसार मात्रा देनी चाहिए। रोगी को दस्त न होने की अवस्था में केवल दो मात्राएँ प्रातः सायं देने से ही काम चल सकता है। आहार में दूध दे सकते हैं।

कफ ज्वर के लक्षण और उपचार

कफ से उत्पन्न ज्वर में ज्वर का वेग कम रहता है। परन्तु शरीर में आलस्य, भारीपन, जकड़ापन और शीतलता की प्रतीति होती है। हाथ-पाँव विशेष रूप से ठण्डे हो जाते हैं। अङ्गों में हड़कल, उदर पर भारीपन, पेट-दर्द, अपच, मिचली, वमन, रोमाँच, अधिक नींद आना, जुकाम, खांसी तथा नेत्र श्वेतता आदि लक्षण देखे जाते हैं।

इस ज्वर में नारङ्गी रङ्ग की बोतल का जल ढाई-ढाई तोले की मात्रा में दिन में चार बार देने से लाभ होता है। बालकों को उनके बल और आयु के अनुपात से मात्रा में कमी करनी चाहिए। उन्हें दो बार देने से ही काम चल सकता है। आहार में रोगी को दूध दें साथ ही सुपाच्य फल भी दे सकते हैं।

दो दोषों के ज्वर के लक्षण और उपचार

वात पित्त, वात-कफ या पित्तकफ के भेद से उत्पन्न यह ज्वर तीन प्रकार का होता है। इनमें से प्रथम में वात-पित्त दोनों प्रकार के ज्वरों के सम्मिलित लक्षण मिलते हैं। दूसरे प्रकार के ज्वर में वात-कफ के मिश्रित लक्षण तथा तीसरे ज्वर में पित्त-कफ के ज्वरों के मिले हुए लक्षण पाये जाते हैं।

इनमें दोनों ज्वरों के लक्षणों के अनुसार जल के रङ्ग का निश्चय करना चाहिए। यदि रोगी को ज्वर के साथ दस्त भी होते हों तो उस अवस्था में नारङ्गी रङ्ग का पानी दिया जाना उचित है। रोगी को खाने को कुछ न दिया जाय।

त्रिदोषज या सन्निपातज ज्वर के लक्षण और उपचार

इसमें तीनों दोषों के प्रकोप के मिश्रित लक्षण पाये जाते हैं। प्रमुख लक्षण यह हैं—क्षणभर में ठण्ड और क्षणभर में गर्मी लगना और दाह का अनुभव होना, नेत्रों का फटे-फटे दिखाई देना, उनमें लाली और अश्रु पात होना, कानों में गुंजन का शब्द सुनाई देना, कण्ठ में काँटे-से पड़ने का अनुभव तथा जोड़ों और कण्ठ में दर्द होना, सर्वांग में शिथिलता, अरुचि तृषा दाह, प्रलाप, भ्रम, कम्प, निद्रानाश आदि।

त्रिदोषजन्य या सन्निपातज ज्वर में यदि शीत का प्रकोप और नाड़ी-शैथिल्य हो तो रोगी को लाल रङ्ग की बोतल के पानी की केवल एक या दो मात्रा देने से काम चल सकता है। जहाँ तक हो सके लाल रङ्ग के जल का प्रयोग रोग की गम्भीर अवस्था में ही किया जाय। सामान्य लक्षणों में तो नारङ्गी बोतल के जल का प्रयोग ही उचित होता है।

यदि सन्निपात के रोगी को प्रलाप (बकवास) की अधिकता हो तो उसे आसमानी रङ्ग के काँच का प्रकाश दो-दो घन्टे के अन्तर से दिया जाय। जब प्रलाप बन्द हो जाय तब प्रकाश देना रोककर आसमानी

रङ्ग का जल देना हितकर रहता है । प्रलाप के साथ वमन की अवस्था में बैंगनी रंग का प्रयोग भी उचित होगा।

मलेरिया या विषम ज्वर के लक्षण और उपचार

यह ज्वर ठण्ड लगकर आता है। इसके कई प्रकार हैं—नित्य चढ़ने उतरने वाला बीच में एक दिन छोड़कर तीसरे दिन चढ़न वाला अथवा बीच में दो दिन छोड़कर चौथे दिन आने वाला।

इन ज्वरों में लक्षणानुसार उपचार करना चाहिए। जाड़ा लगने की अवस्था में नारङ्गी रंग की बोतल का पानी दिया जा सकता है। यदि ज्वर के साथ दस्त हों तो भी यही पानी लाभ करेगा। सिर दर्द हो, किन्तु ठण्ड का अनुभव न हो तो आसमानी रंग का प्रयोग करना उचित है।

यदि रोगी को कागजी नीबू का सेवन कराया जाय तो मलेरिया शीघ्र दूर होता है। आहार में मुसम्मी का रस एव दूध दे सकते हैं। चढ़ते हुए ज्वर में कुछ भी न दें।

अन्यान्य प्रकार के ज्वर

निमोनिया, मोतीझला, चेचक, इन्फ्लूऐन्जा, यक्ष्मा आदि अनेक प्रकार के ज्वर होते हैं, उनमें भी लक्षणानुसार उपचार करना ही उचित होता है। क्षय की प्रारम्भिक अवस्था और निमोनिया में नीली बोतल का जल और बिगड़े हुए मोतीझला या दबी हुई चेचक में लाल रंग की १-२ मात्रा दी जाँय। जब उनमें सुधार हो जाय तब आसमानी रंग की बोतल का पानी देने से लाभ होता है। यक्ष्मा की बढ़ी हुई अवस्था में फेंफड़ों पर नीला प्रकाश भी डालना चाहिए।

पाण्डु रोग (पीलिया) के लक्षण और उपचार

इस रोग में खून की कमी होकर शरीर पीला पड़ जाता है। आँख की पुतलियाँ पीली हो जाती हैं और रोगी बाह्य दृश्य पदार्थों को पीला ही देखता है। इसके भी वातादि के भेद से तीन, चौथा त्रिदोषज और पाँचवाँ मृत्तिका जन्य प्रकार होता है।

वातज पीलिया में त्वचा, नेत्र और मूत्रादि में क्रमशः रूक्षता, ललौंई तथा ललौंईयुक्त काला वर्ण होता है एवं शरीर में कम्प, चपका, अफरा और चित्त भ्रम जैसे लक्षण देखे जाते हैं।

पित्तज में नेत्र और मल-मूत्र सब पीले हो जाते हैं। शरीर में दाह और तृषा के साथ ज्वर और मल पतला उतरता है। पूरा शरीर एवं चेहरा आदि में पीलापन आ जाता है।

कफज पाण्डु में भारीपन, आलस्य, तन्द्रा एवं शोथ आदि के साथ कफ गिरता है तथा नेत्र, मुख, त्वचा और मूत्र आदि श्वेत हो जाते हैं।

त्रिदोषज या सन्निपातज में तीनों दोषों के सम्मिलित लक्षण पाये जाते हैं। इसमें जी मिचलाना, अरुचि, वमन, तृषा, व्याकुलता, ज्वर, शरीर शोथ और क्षीणता उत्पन्न हो जाती है और इन्द्रिया की विषय ग्राहक सामर्थ्य का भी ह्रास हो जाता है।

मृत्तिकाजन्य पाण्डु का अर्थ है मिट्टी खाने से उत्पन्न हुआ पीलिया रोग। कषैली मिट्टी खाने से वात का प्रकोप और खारी मिट्टी खाने से कफ का प्रकोप होता है। इस प्रकार वातादि के दोष से रस आदि में रूखापन उत्पन्न हो जाता जाता है, जिससे खाया हुआ अन्न भी रूखा हो जाता है।

पीलिया रोग मे या तो मलावरोध स्थायी हो जाता है अथवा दस्त लग जाते हैं। इन सब का उपचार लाक्षणिक रूप से किया जाना उचित है।

पाण्डुरोग में आसमानी बोतल का जल और इसी रंग का प्रकाश डालना अधिक उपयोगी है। आवश्यक होने पर लक्षणानुसार अन्य रंग का भी प्रयोग कर सकते हैं। नित्य प्रति १०-१५ मिनट तक प्रकाश डालें और प्रातः सायं दो मात्राएँ जल की दें।

पाण्डु रोग के रोगी को फलों में पपीता, अनन्नास, मुसम्मी एवं

अमरूद आदि दे सकते हैं। मट्ठा आदि देना भी अहितकर नहीं है। घी, मक्खन आदि बिल्कुल न दें। टब स्नान करावें।

सिर दर्द के लक्षण और उपचार

वैसे तो सिर दर्द कोई स्वतन्त्र रोग नहीं होता, वरन् यह किसी रोग विशेष का उपसर्ग मात्र ही है। इसलिए इसकी उत्पत्ति के अनेक कारण हैं। हम इस विकार की शान्ति के विषय में बताना उचित समझते हैं।

सिर दर्द के प्रमुख लक्षण हैं - सिर में हल्का दर्द, भौंहों में दर्द, नासा से मस्तक पर्यन्त तीव्र वेदना, कपाल में हल्का, किन्तु बेचैन करने वाला दर्द अथवा सुई चुभोने या हथौड़े की हल्की चोट मारने जैसा दर्द।

यदि सिर दर्द के साथ वायु का दोष, वायु का न सरना एवं उदर-शूल आदि विकार हों, उसमें नारंगी रंग कीं बोतल का जल प्रातः सायं देना चाहिए। यदि अकारण सहसा ही सिर में दर्द हो गया हो, नारंगी रंग की बोतल के जल की ५ तोले की एक मात्रा देने से ही लाभ हो जाता है।

यदि सिर दर्द के साथ पेट-दर्द और दस्त भी हों तो रोगी को नीले रंग का जल पिलाने से लाभ होता है। तथा सामान्य अवस्था में इसी रंग का प्रकाश डालना चाहिए अथवा इसी रंग के जल में भिगोई हुई पट्टी सिर पर रखी जाय।

अतिसार के लक्षण और उपचार

आयुर्वेद में वात, पित्त, कफ त्रिदोष, शोक, आँव और भय से उत्पन्न होने वाले सात प्रकार के अतिसारों का विशेष रूप से वर्णन किया है। वातातिसार में लाल, फेनयुक्त और रूक्ष दस्त बार-बार थोड़ा-थोड़ा उतरता है। इसमें गुदा से शब्द भी होता है।

पित्तातिसार में पीले, नीले और कुछ ललोंईपन पर दस्तों के साथ

ही रोगी को तृष्णा, दाह, मूर्च्छा और गुदा में पक जाने के समान पीड़ा होता है।

कफातिसार में श्वेत वर्ण का कफयुक्त, चिकना, दुर्गन्धित एवं ठण्डा मल उतरता है तथा रोगी के शरीर में रोमांच होने लगता है।

त्रिदोषजन्य अतिसार में माँस के धोवन या शूकर की वसा के समान दस्त होता है। इसमें वात, पित्त और कफ तीनों प्रकार के दोषों के लक्षण दिखाई देते हैं।

स्त्री, पुत्र, वन्धु आदि किसी प्रियजन के वियोग या मरण इत्यादि के शोक का प्रभाव पाचन-तन्त्र पर पड़ने से दस्त लग जाते हैं, वह शोक जन्य अतिसार होता है। उनकी उत्पत्ति का लक्षण है रोने के कारण वाष्प उष्ण होकर जठराग्नि को मन्द करती हुई कोष्ठ में पहुँचकर रक्त का क्षुब्ध होकर बार-बार दस्त के साथ निकलना। यही लक्षण और कारण भयजन्य अतिसार के भी समझने चाहिए।

परन्तु आमातिसार में अन्न के ठीक प्रकार से परिपाक न होने के कारण वायु कुपित होकर कोष्ठ में पहुँचता और रक्तादि धातुओं और मलों को बार-बार बाहर निकालता है, जिनसे अनेक वर्ण के शूल युक्त दस्त होने हैं।

सब प्रकार के अतिसारों में रोगी को गरिष्ठ भोजन का त्याग कर देना चाहिए। इससे शीघ्र लाभ हो सकता है। ऐसे रोगी को पूर्ण विश्राम करना चाहिए।

अजीर्ण के लक्षण और उपचार

यद्यपि इसके अनेक भेद और कारण माने जाते हैं, परन्तु प्रमुख कारण तो वात पित्त और कफ का कुपित होना ही है। वात से विष्टब्धाजीर्ण, पित्त से विदग्धाजीर्ण और कफ से आमाजीर्ण उत्पन्न होता है।

विष्टब्धाजीर्ण मे पेट फूल जाता है और दर्द होता है। अधोवायु रुक जाती है मल नहीं उतरता, शरीर जकड़ जाता है, अंगों में वेदना एवं मोहादि के लक्षण होते हैं।

विदग्धाजीर्ण में प्यास अधिक लगती है। दाह, भ्रम, स्वेद, धुँए के साथ खट्टी डकारें आतीं और रोग अधिक बढ़ने पर मूर्च्छा तक हो जाती है। पेट के भारीपन के साथ ही पेट-दर्द भी बना रहता है।

आमाजीर्ण में भी पेट अधिक भारी रहता, जी मिचलाता, उबकाई आतीं और खाये हुए पदार्थ के समान ही डकारें आने लगती हैं। मुख पर भारीपन के साथ कपोलों और नेत्रों पर भी सूजन आ जाती है और दस्त भी होने लगते हैं। यदि इन उपद्रवों का उपचार नहीं होता तो रोग बढ़ता जाता है।

विष्टब्धाजीर्ण के लक्षणों में नारङ्गी बोतल का तीन-चार तोले पानी दिन में दो बार दिया जाय। विदग्धाजीर्ण की अवस्था में नीले रङ्ग की बोतल का दो-ढाई तोले पानी दिन में ३-४ बार देना चाहिए। आमाजीर्ण में आसमानी रङ्ग की बोतल का जल एक-एक घण्टे के अन्तर से एक-एक तोला की मात्रा में दे सकते हैं। सभी प्रकार के अजीर्णों में मात्रा और समय के अन्तर का कम या अधिक किया जाना रोग की अवस्था पर निर्भर करता है। ऐसे रोगी को नित्य प्रति एनिमा, कटि स्नान आदि करना चाहिए।

उदरशूल के लक्षण और उपाय

यह विकार पाचन-प्रणाली की खराबी से होता है। बिना भूख भोजन कर लेने या गरिष्ठ अन्न का आहार करने से उसका परिपाक ठीक प्रकार से नहीं हो पाता, जिसके कारण मलावरोध या अतिसार आदि के साथ यह उपद्रव प्रकट हो जाता है।

इसमें नाभि के नीचे या उसके आस-पास हल्का अथवा तेज दर्द होता है। यदि हल्का दर्द होता है तो उसके साथ शरीर में भारीपन और आलस्य बना रहता है। जी मिचलाता है, परन्तु चाहने पर भी वमन नहीं हो पाता।

यदि तेज दर्द रहता है तो बेचैनी के कारण रोगी रोने-चिल्लाने लगता है। यदि दर्द एक स्थान पर होता है तो वहाँ का भाग अधिक

फूला हुआ दिखाई देता है। कभी-कभी वायु ऊपर की ओर चढ़ती हुई प्रतीत होती है।

मलावरोध के साथ पेट दर्द, शरीर में आलस्य और बेचैनी की अवस्था में नारङ्गी बोतल का जल पिलाने से लाभ होता है। साथ ही पेट पर नारङ्गी रङ्ग का प्रकाश भी आठ-दस मिनट तक डालना चाहिए। पुराने उदरशूल में भी यही जल उपयोगी रहता है।

तेज उदरशूल में पेट पर गर्म पानी से सेंक भी करना चाहिए। भूख लगने पर भोजन हल्का एवं सुपाच्य करना चाहिए। फलाहार अधिक करें और हरे शाक-सब्जी के साथ दिन में एक बार भोजन करना उचित है।

नारङ्गी बोतल का तैल लगा कर हल्के हाथ से मलने से भी पेट का दर्द शान्त होने लगता है। रोगी को स्थायी लाभ के लिए एनिमा और कटि-स्नान करना चाहिए।

अग्निमांद्य के लक्षण और उपचार

मन्दाग्नि में भूख कम लगती है और अन्न से अरुचि हो जाती है। परन्तु यह दोष खान-पान की गड़बड़ी से उत्पन्न हो जाता है। जो लोग शरीर के लिए अपेक्षित परिश्रम या व्यायाम आदि नहीं करते, उन्हें भी इस रोग का सामना करना होता है।

खान-पान की गड़बड़ी से पाचन शक्ति निर्बल होकर मन्दाग्नि या अग्निमांद्य रोग को उत्पन्न कर देती है। इसमें मनुष्य निर्बल और निराश जैसा हो जाता है। सूर्य-किरण-पद्धति से उपचार करने वाले विशेषज्ञों के मत में इसके दो प्रकार हैं—(१) लाल की अधिकता होना, और (२) नीले रङ्ग की अधिकता होना। लाल रङ्ग की अधिकता होने पर रोगी दुर्बल और कृश शरीर का हो जाता है, जब कि नीले रङ्ग की अधिकता होने पर रोगी का शरीर मोटा होता है।

इसके उपचार स्वरूप लाल की अधिकता से उत्पन्न हुए रोग में

रोगी को प्रतिदिन प्रातः-सायं दो बार ढाई-ढाई तोले की मात्रा में नीले रङ्ग का पानी पिलाने से लाभ होता है, जब कि नीले रङ्ग की अधिकता वाले रोग में नारङ्गी बोतल का जल उतनी ही मात्रा में उतनी ही बार नित्य प्रति दो-तीन महीने तक देने से लाभ हो सकता है।

अग्निमांद्य के रोगी को यथा सम्भव उपवास, एनिमा, कटि-स्नान, आदि का प्रयोग करते रहना चाहिए। आहार में फलों का रस लेना उचित हो सकता है।

वमन के लक्षण और उपचार

वमन को छर्दि, उल्टी, रद्द या कय भी कहते हैं। यह वातादि दोषों के भेद से सात प्रकार की मानी गई है। परन्तु इसके सामान्य लक्षण यह हैं—मुख का सूखना, शिर और नाभि में दर्द, पसलियों में दर्द, स्वर भंग, खांसी, उबासी के साथ फेन युक्त कसैली वमन आदि वातदोष की प्रधानता से होते हैं।

पित्तज में अधिक प्यास लगना, मुख सूख जाना, तालु और नेत्रों में जलन, चक्कर आना, अँधेरा आना या बैचेनी होना, अति उष्ण, पीला, हरा, कटु, धुँए के समान जलती हुई वमन आदि लक्षण होते हैं।

यदि मुख में मिठास, कफस्राव, भारीपन, निद्रा, तन्द्रा, अरुचि, चिकने, गाढ़े और मीठे कफ का उलटना एवं रोमहर्ष आदि लक्षण हों तो उसे कफजन्य समझना चाहिए।

त्रिदोषज में तीनों दोषों के लक्षण होते हैं। प्रमुख रूप से अजीर्ण, उदरशूल, अरुचि, दाह, प्यास, श्वास, मोह आदि के साथ नमकीन, खट्टी, गाढ़ी, गर्म तथा लाल और नीले रङ्ग की प्रबल वमन होती है।

कृमियों के कारण होने वाली वमन में जी मिचलाता और दर्द होता है। आँव से उत्पन्न वमन आम-विकार के लक्षण देखे जाते हैं। स्त्रियों को गर्भावस्था में भी वमन होने लगती हैं। परन्तु यदि किसी रोगी को रक्त-वमन हो तो उसके उपचार में उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए।

सब प्रकार की वमन में आसमानी बोतल का जल अधिक उपयोगी

रहता है। रक्त वमन में भी इसी से काम लेना चाहिए। कुछ चिकित्सक मुख से रक्त जाने में पीले रङ्ग के पानी का व्यवहार करते हैं। नीला रङ्ग भी वमन में उपयुक्त रहता है। गर्भवती को होने वाली वमन में आसमानी बोतल का जल उपयुक्त रहता है।

मलावरोध के लक्षण और उपचार

इसका कारण भी खान-पान की गड़बड़ी ही है। क्योंकि गरिष्ठ भोजन, अतिभोजन, असंमित आहार-विहार से मलावरोध हो जाता है। इसे कोष्टबद्धता, मलविष्टम्भ या कब्ज भी कहते हैं। इसमें शरीर में भारीपन, बेचैनी, अरुचि, मिचली, अफरा, उदरशूल आदि लक्षणों के साथ दस्त साफ न होना या मल का बिल्कुल न होना आदि लक्षण रहते हैं।

यद्यपि आयुर्वेद आदि के विद्वानों ने मलावरोध को भी अनेक प्रकार का माना है। फिर भी इसे नवीन और जीर्ण के भेद से दो प्रकारों में बाँटना अधिक उपयुक्त है। नवीन कब्ज को तो सामयिक और लाक्षणिक उपायों से काबू में ला सकते हैं, परन्तु जीर्ण (पुराने) कब्ज का दूर होना बहुत कठिन होता है। इसलिए कोई-कोई मनुष्य तो इस रोग से जीवन-पर्यन्त परेशान रहता है। परन्तु ध्यान रहे कि यह रोग कष्टसाध्य होने पर भी खतरनाक नहीं होता।

इस रोग में लक्षण के अनुसार उपचार करने से शीघ्र लाभ होता है। अधिकतर बैठे रहने वाले अपरिश्रमी मनुष्य को कब्ज हो तो उसे पीले रङ्ग का पानी देना चाहिए। जीर्ण मलावरोध में यह बहुत उपयोगी है।

जिनकी आँतें ठीक प्रकार से कार्य नहीं करतीं और इसलिए उनमें मल संचित होता रहता है, जिसके कारण मलावरोध स्थायी रूप ले लेता है, उनके लिए नारङ्गी रङ्ग की बोतल के पानी से लाभ हो सकता है। नाभि पर हरी बोतल में निर्मित तैल की मालिश से स्वतः मल उतरने लगता है।

उक्त उपचारों के साथ रोगी को खान-पान पर भी ध्यान देना चाहिए। फल का सेवन अधिक करे और भुसी युक्त रोटी हरे शाक-सब्जी के साथ आहार में ले।

चिकित्सा के आरम्भ में कम से कम तीन उपवास करें अथवा फलों के रस का सेवन करें। जाड़ों की ऋतु हो तो गर्म जल के टब में और ग्रीष्म ऋतु हो तो ठण्डे जल के टब में बैठें। अथवा गर्म-ठण्डा बैठक स्नान करें।

रक्तपित्त रोग के लक्षण और उपचार

इस रोग में नाक, मुख, गुदा या मूत्र-मार्ग से रक्त गिरता है। आयुर्वेद में ऊर्ध्वगामी, अधोगामी और द्विमार्गगामी के भेद से इसे तीन प्रकार का कहा गया है। नाक, कान, मुख और नेत्र जो गिरे वह ऊर्ध्वगामी, उपस्थ, योनि और गुदा से गिरे वह अधोगामी तथा ऊपर नीचे दोनों ही मार्गों से गिरे वह द्विमार्गगामी होता है।

इन सबकी किरण-चिकित्सा समान ही है। रोगी को प्रातःकाल ढाई तोले की मात्रा में आसमानी रंग का पानी दें तथा दुपहर और सायंकाल में पीले रङ्ग की बोतल का दो-दो तोले पानी पिलावें। यह चिकित्सा क्रम धैर्य पूर्वक चार-छः मास चलने दें तो लाभ हो सकता है।

जुकाम के लक्षण और उपचार

इसे प्रतिश्याम भी कहते हैं। वात, पित्त, कफ के भेद से यह रोग प्रमुख रूप से तीन प्रकार का माना गया है। वातज में दोनों नासापुटों में मल भरा रहता है। कण्ठ, तालु और ओष्ठ शुष्क हो जाते हैं, स्वर बैठ जाता है।

पैत्तिक में पीले रङ्ग का गर्म स्राव होता है। समूचे शरीर में दाह के साथ निर्बलता, प्यास का अधिक लगना तथा हल्का तापमान हो जाना आदि लक्षण दिखाई देते हैं।

कफज प्रतिश्याय में नाक से सफेद और गाढ़ा कफ गिरता है।

शरीर में भारीपन, कण्ठ, तालु और सिर में खुजलाहट तथा बार-बार स्राव होने से व्याकुलता रहती है।

सन्निपातज में तीनों दोषों के लक्षण मिलते हैं तथा रक्तज में नाक से रक्त गिरता और नेत्र लाल हो जाते हैं। वक्षस्थल में दाह आदि का भी अनुभव होता है। कुछ व्यक्तियों को जुकाम के साथ सिर-दर्द भी हो जाता है।

सब प्रकार के जुकाम में रोगी को हरी बोतल का जल दो-दो तोले प्रातः-सायं दोनों समय पिलाने से लाभ होता है। साथ ही मस्तक पर हरे रङ्ग का प्रकाश पाँच-सात मिनट डालना चाहिए। भोजन में फलों का रस अधिक प्रयोग करें।

यदि जुकाम पुराना हो तो रोगी को पीली बोतल का पानी देने से लाभ होता है। मात्रा वही दो या ढाई तोले प्रति बार दिन में २-३ बार देना पर्याप्त होगा। यदि यह पानी नाक के द्वारा पिलावें तो अधिक लाभ करेगा। भोजन में हल्का, सुपाच्य आहार, गेहूँ की रोटी, दलिया, हरे-शाक सब्जी और ऋतुफल का प्रयोग करें। चिकित्सा धैर्य पूर्वक करने से ही लाभ होता है। प्रारम्भ में १-२ सप्ताह फलाहार करना हित-कर है।

टॉन्सिल्स के लक्षण और उपचार

टान्सिल्स सभी के होते हैं। परन्तु यदि वे बढ़ जाते हैं, तो बहुत कष्ट देते हैं। उनके साथ कभी-कभी काग भी गिर जाता है तथा कण्ठ काँटे-से और मुख में छाले हो जाते हैं। परन्तु यह आवश्यक नहीं कि टान्सिल बढ़ने के साथ यह सभी लक्षण हों।

इसमें नीली बोतल का जल देने से लाभ हो जाता है। दर्द की स्थिति में कण्ठ के बाहरी भाग पर नीली बोतल के जल की पट्टी रखनी चाहिए। पट्टी रखने का पानी ताजा बनाया हुआ गर्म अवस्था में ही प्रयोग में लाया जाय तो और भी अच्छा है।

खाँसी के लक्षण और उपचार

प्राचीन चिकित्सकों ने खाँसी के अनेक भेद कहे हैं, परन्तु वर्तमान-कालीन चिकित्सक सूखी, तर और कुकर खाँसी के रूप में प्रायः तीन भेद ही मानते हैं। आयुर्वेद ने भी वात, पित्त और कफ के भेद से तीन ही प्रमुख माने हैं, जो कि इस प्रकार हैं—

वातज कास में खाँसी शुष्क होती है, कफ नहीं निकलता, वेग अधिक रहता है। सूखी खाँसी के कारण खाँसते-खाँसते वक्षस्थल भी दुखने लगता है। स्वर क्षीण हो जाता है, हृदय, कनपटी, पसली, उदर और सिर में दर्द होता है एवं मुख भी शुष्क होने लगता है।

पित्तज कास में शरीर में जलन होती और पीलापन आने लगता है। छाती में जलन होती और मुख सूख जाता स्वाद कड़वा लगता है। प्यास अधिक लगती है। किसी-किसी को कण्ठ में जलन और सिर-दर्द भी प्रतीत होने लगता है।

कफज कास में सिर में वेदना की अधिकता के साथ मुख और कण्ठ में कफ लिपटा रहता है। शरीर में भारीपन, खुजली या सुरसुराहट की प्रतीति होती है। भोजन में अरुचि और मुख के स्वाद में परिवर्तन आ जाता है।

उरक्षत कास और क्षयज कास, यह दो भेद और होते हैं। उरक्षत की खाँसी में फेफड़ों में घाव होकर पहिले सूखी खाँसी और फिर कण्ठ में पीड़ा के साथ रक्तस्राव होने लगता है। क्षयज कास क्षय के रोगी को होती है। इसमें सूखी खाँसी आती और कभी-कभी खून के साथ रक्त भी आ सकता है।

सूखी खाँसी में रोगी को नीली बोतल का पानी पिलाने से उसकी शुष्कता मिटकर तरी आने लगती और कफ सरलता से निकल सकता है।

तर खाँसी में भी कफ के गाढ़ा होने के कारण कठिनाई से निकलने

पर नारङ्गी रङ्ग की बोतल का पानी दो-दो तोले की मात्रा में देने से लाभ होता है।

पुरानी खाँसी में भी नीले रङ्ग की बोतल का ही पानी देना हितकर है, परन्तु बीच-बीच में शक्ति बढ़ाने के लिए नारङ्गी रङ्ग की बोतल का पानी भी देते रहना चाहिए।

कुकर खाँसी या अन्य इसी प्रकार की कठिन खाँसी में भी नीली बोतल का जल दिया जा सकता है। रोगी को कमजोरी प्रतीत हो तो बीच-बीच में नारङ्गी बोतल का पानी दिया जाय। जब नीली बोतल का जल दिया जाय तब गले पर उसी जल की पट्टी रखें अथवा नीला प्रकाश दिखावें।

श्वास के लक्षण और उपचार

यह बड़ा दुष्ट रोग है। आयुर्वेद ने इसे पाँच प्रकार का माना है। इसमें खाँसने में अत्यन्त कष्ट, वायु का ऊपर की ओर खिचने जैसा अनुभव, ऊर्ध्वश्वास, नेत्रों में चपलता, मुख का खुला रहना, श्वासों की घुरघुराहट सुनाई देना, मुख से बोल न निकल सकना, हृदय में पीड़ा, पेट फूलना, चित्त में उद्विग्नता बढ़ना, प्रलाप करना, कफ का अवरोध होना आदि अनेकानेक लक्षण विभिन्न भेदों के अनुसार दिखाई देते हैं। जब इसका दौरा होता है तब रोगी को अत्यन्त बेचैनी होती है।

जब श्वास का दौरा होता हो; तब नारङ्गी रङ्ग की बोतल का जल एक-एक तोला की मात्रा में प्रत्येक दस या पन्द्रह मिनट के अन्तर से देने से रोगी को शीघ्र लाभ होने लगता है। यदि एक घण्टा भर तक जल देते रहने पर भी लाभ प्रतीत न हो तो तीन घण्टे तक उसे कुछ भी न दें और फिर पुनः नारङ्गी बोतल का पानी देना उसी प्रकार आरम्भ कर दिया जाय। इस बार अवश्य लाभ हो जाना चाहिए।

दौरा न होने की अवस्था में भी भोजनोपरान्त नारङ्गी रङ्ग का

पानी ढाई तोले की मात्रा में दोनों बार देने से श्वास रोग में भी लाभ होता है और भोजन भी पच जाता है।

स्वरभंग के लक्षण और उपचार

चिकित्सा शास्त्रियों के अनुसार स्वरभंग रोग भी अनेक प्रकार का होता है, जिसमें गला बैठ जाता है और स्वर फटा-फटा जैसा प्रतीत होता है। यदि यह वात विकारों से होता है तो उसमें रोगी के नेत्र, मुख, मल और मूत्र का वर्ण काला हो जाता है और कण्ठ स्वर गधे के समान फटा हुआ-सा निकलता है। यह वात-विकार से उत्पन्न रोग के लक्षण हैं।

पित्तज स्वरभंग के रोगी के नेत्रादि पीले पड़ जाते हैं, तथा बोलने में कण्ठ में बड़ी जलन होती है। जबकि कफज में गला बैठ जाता और मुख से वाणी नहीं निकल पाती।

सन्निपात से उत्पन्न स्वरभंग में वातादि तीनों दोषों के प्रकोप के लक्षण मिलते हैं। परन्तु मेदजन्य में स्वर बड़ी कठिनाई से निकल पाता है, क्योंकि कण्ठ के भीतर चर्बी लिपट जाती है। क्षयण स्वरभंग का कारण धातुओं का क्षय होना है। कैंसर आदि भयंकर व्याधियों के कारण भी स्वरभंग हो जाता है।

किसी भी प्रकार का स्वरभंग हो, उसमें नीली बोतल का जल ही अधिक हितकर रहता है। रोग बढ़ा हुआ हो, शोध के साथ-साथ दर्द हो तो ६-६ माशे जल ३०-३० मिनट के अन्तर से देना उचित होगा। ऐसा करने से सूजन, कांटे पड़ना एवं छाले आदि दूर होते हैं।

रोगी को हल्का, सुपाच्य भोजन करना चाहिए। ऋतुफलों का सेवन अधिक किया जाय। गर्म-गर्म दूध पीने से भी आराम मिलता है।

जिह्वा के रोग और उनके उपचार

जिह्वा पर भी अनेक प्रकार के विकार हो जाते हैं। जीभ पर छाले हो जाना या जीभ की चमड़ी में दराद पड़ जाना, काँटे से उत्पन्न हो जाना इत्यादि सामान्य लक्षण हैं।

इसमें गहरी हरी बोतल का जल पिलाने से शीघ्र लाभ होता है। साथ ही इसी जल से गरारे करने चाहिए।

बहुत बार जीभ पीली पड़ जाती है, लाल रङ्ग के काँटे उत्पन्न होते हैं और जलन होने लगती है। इस स्थिति में भी अधिक गहरी हरी बोतल का पानी प्रयोग करें। गहरी हरी बोतल न हो तो हरे रङ्ग की बोतल के जल में थोड़ा-सा नीली बोतल का जल मिलाने से काम चल जाता है। जिह्वा पर गहरे हरे रङ्ग का तैल फुरैरी से लगाना भी शीघ्र लाभ के लिए हितकर है।

कान के रोग और उनके उपचार

कान में अनेक प्रकार के उपद्रव हो जाते हैं। कान में दर्द, शोथ, फुंसी और कान का बहना आदि सामान्य विकार हैं। परन्तु, कानों में झनझनाहट के साथ बहिरापन हो जाना कठिन रोग है।

सामान्य विकारों में नीली बोतल के पानी का प्रयोग करना चाहिए। इसी पानी से कान को धोना और इसी का सेवन करना उचित होता है। दर्द, फुंसी तथा कान के बहने आदि में इससे शीघ्र लाभ होना सम्भव है। साथ ही कान के भीतर नीले काँच का प्रकाश डालना चाहिए।

यदि कम सुनाई देता हो तो भी यही उपचार उचित है। परन्तु अधिक बहिरेपन की अवस्था में पीली बोतल की दवा का प्रयोग किया जाय। ऐसे रोगी को हल्का, सुपाच्य भोजन तथा फल आदि का आहार करना उचित है।

दाँतों के विकार और उनके उपचार

दाँतों में दर्द, दाँतों का हिलना, दाँतों से रक्त निकलना, मसूड़ों का फूलना आदि अनेक विकार उत्पन्न हो जाते हैं। यदि विकार साधारण हो तो नीली बोतल का जल १ भाग और हरी बोतल का जल ३ भाग मिला कर सेवन करना चाहिए तथा इसी से कुल्ले करना चाहिए।

मसूड़े फूलने पर नीली बोतल के पानी का सेवन करें और उसी से

कुल्ले करें। परन्तु मसूड़े न फूले हों और केवल दर्द हो तो नारङ्गी रङ्ग की दवा से कुल्ले करना उचित होगा। दाँत के हिलने की अवस्था में भी पीली दवा का प्रयोग किया जाय। मसूड़े में किसी कारणवश घाव होगया हो तो आसमानी रङ्ग की बोतल के जल से कुल्ले करें और आसमानी रङ्ग का ही तैल फुरैरी से उस घाव पर लगावें।

रोग अधिक परेशान करने वाला हो और बेचैनी बढ़ गई हो तो ऊपर जिस रङ्ग की फुरैरी लगाने को कहा गया है, उस रङ्ग की बोतल का पानी भी पीना चाहिए। ऐसा करने से बेचैनी दूर होती और रोग में शीघ्र ही आराम हो जाता है।

नेत्र-रोग और उनके उपचार

नेत्रों में अनेक प्रकार के विकार उत्पन्न हो जाते हैं। उनमें सामान्य विकार आँखें दुखनी आना है। इसमें आँखों में खड़का मारता और लाली आ जाती है। पानी भी बहता है। इसमें बाँये नेत्र में आसमानी रङ्ग की बोतल का पानी और दाँयें नेत्र में पीली बोतल का पानी २-३ बूँद टपकाना ठीक रहता है।

धूल-धक्कड़ से बचने के लिए आँखों पर नीले या हरे का चश्मा लगा लिया जाय। ऐसे रोगी के पेट में कब्ज हो तो एनिमा दिया जाय।

आँख में ललोंई के साथ शोथ होने की अवस्था में पीली बोतल और नीली बोतल के पानी का सम भाग में मिश्रण कर उसमें कपड़ा भिगो कर गद्दी रखें और पानी पीने को दें। यदि आँखों से पानी गिर रहा हो तो भी यही उपचार करें।

यदि तीव्र खड़का या जलन हो और गर्म पानी निकल रहा हो तो उसे गहरी हरी बोतल का जल सेवन करावें और उसी को गुनगुना करके सेंक करें। साथ ही हरे काँच का प्रकाश डालें। डालने के लिए आसमानी बोतल के पानी का प्रयोग कर सकते हैं।

यदि नेत्रों से कम दिखाई देता हो तो नेत्रों पर नीली बोतल के

पानी के छींटे दें और नीली बोतल में सिद्ध घृत को सलाई से लगावें। इसे धैर्य पूर्वक करने से लाभ हो सकता है।

यदि आँख में जाला या फुली पड़ गई हो तो आँखें बन्द करके सूर्य की ओर ५-७ मिनट तक देखने का धीरे-धीरे अभ्यास करें और फिर नीली बोतल के जल के छींटे मारे। एक नीली शीशी में शहद और प्याज का रस समान भाग डाल कर हिलावें और धूप में रख दें। तीन चार घण्टे बाद धूप से उठा कर छाया में रख दें और ठण्डा होने पर इस 'मलाण्डु-मधु' को चांदी की सलाई से आँखों में, दिन में दो बार लगावें। यह प्रयोग जाला, फुली, रतौंधी, रोहे, दर्शन शक्ति की कमी आदि विभिन्न रोगों में लाभ करती है। साथ ही नेत्रों को बन्द करके उन पर नीला प्रकाश डालना भी हितकर है।

बवासीर और उसके उपचार

यद्यपि बवासीर के भी अनेक प्रकार हैं, तथापि प्रमुख रूप से यह दो प्रकार की ही मानी जाती है—(१) खूनी की, और (२) बादी की। खूनी बवासीर में मस्सों से सेरों खून गिरता है, इसलिये इसे रक्तार्श भी कहते हैं और बादी की बवासीर में खून तो नहीं बहता, परन्तु मस्सों में कष्ट होता है। यह मस्से फुंसी या अंकुर जैसे आकार के अनेक वर्ण के, कठिन या मुलायम भी होते हैं।

रक्तार्श के रोगी को प्रातः-सायं ढाई-ढाई तोले की मात्रा में नीली बोतल का पानी देना चाहिए तथा मस्सों पर नीली बोतल का तैल फुरैरी से या हाथ से लगाया जाय। अथवा नीली बोतल के पानी में रुई भिगो कर मस्सों पर रखें और नीले रङ्ग का ही प्रकाश डालें।

वातार्श में दो या ढाई तोले की मात्रा में नारङ्गी रङ्ग की बोतल का पानी प्रातः, मध्यान्ह और सायंकाल (दिन में तीन बार) दिया जाय। मस्सों पर आसमानी रंग के पानी में रुई भिगो कर रखें अथवा आसमानी कांच से प्रकाश डालें। भोजन में लालमिर्च, खटाई, गुड़, तैल, गर्म पदार्थ तथा कब्जकारक पदार्थ आदि का पूरा परहेज करें।

हृच्छूल और उसके उपचार

यह हृदय रोग के अन्तर्गत ही एक ऐसा उपद्रव है, जो रोगी को बहुत परेशान करने वाला और घातक सिद्ध हो सकता है। इसमें जी का घबराना, जी का उड़ना, बेचैनी, दर्द की व्याकुलता आदि अनेक उपद्रव होते हैं। यदि इनका ठीक प्रकार से उपचार नहीं होता तो रोग असाध्य अवस्था में पहुँच जाता है।

इस रोग में आसमानी रंग की बोतल का पानी बहुत लाभदायक होता है। इसकी दो मात्राएँ प्रातः-सायं दो-दो तोले प्रमाण में देनी चाहिए। हृदय पर आसमानी रंग के काँच का प्रकाश डालना भी उचित है।

रोगी को पूर्ण विश्राम आवश्यक होता है। भोजन में फल, दूध, हरी सब्जी, रोटी, दलिया आदि सुपाच्य वस्तुएँ दी जाँय। परन्तु, नमक बिल्कुल भी न दिया जाय। रोगी को समय-समय पर एनिमा दिया जाय।

ब्लडप्रेशर और उसके उपचार

यह रोग दो प्रकार का होता है—हाई और लो। हाई ब्लड प्रेशर को उच्च रक्तचाप तथा लो ब्लड प्रेशर को निम्न रक्तचाप कहते हैं। इसकी संख्या का ज्ञान रक्तचाप मापक यन्त्र के द्वारा होता है, जो कि उस समय भुजा पर लपेटा जाता है। हृदय के संकोच में दबाव लगभग १६० और प्रसारण के समय ११० रहना स्वाभाविक है।

इसमें शिरशूल, भारीपन, चक्कर आना, जी घबराना, चलने में कष्ट तथा दिल में धड़कन आदि उपद्रव होते हैं। यदि समय पर उपचार नहीं किया जाता तो रोग बढ़ जाता है, इसकी चिकित्सा हृदय-रोगों के समान ही अर्थात् आसमानी रङ्ग के जल और प्रकाश आदि के द्वारा की जाती है। नीली बोतल का पानी भी उचित रहता है। यह उपचार उक्त रक्त-चाप का है, निम्न रक्तचाप वाले रोगी को नारङ्गी रङ्ग की बोतल का जल देना उचित होगा।

पागल कुत्ता या स्यार के काटे का उपचार

यदि पागल कुत्ता या स्यार आदि कोई हिंस्र जीव काट ले तो उस अवस्था में काटे हुए स्थान को आसमानी रङ्ग की बोतल के पानी से धोकर, उसी पानी में वस्त्र भिगो कर उसकी गद्दी रखें और आसमानी काँच का प्रकाश भी उस स्थान पर डालें। औषधि-सेवन के कार्य में भी आसमानी रङ्ग की बोतल का जल नित्य प्रति चार बार दें।

यदि कुत्ता पालतू है तो, आसमानी बोतल में दूध भर सूर्यताप से सिद्ध करें और कुत्ते को नित्य प्रति पिलावें। इससे कुत्ते के पागल होने की आशङ्का नष्ट हो जाती है।

यदि किसी ने किसी के पालतू कुत्ते को विष खिला दिया हो तो उस विष को दूर करने के लिए भी आसमानी बोतल का जल या दूध पिलाने से विष का घातक प्रभाव दूर हो जाता है।

यदि विच्छू, वर्र आदि ने काट लिया हो तो उस स्थान पर नीली बोतल के जल में भिगोई हुई गद्दी बाँध देनी चाहिए और उसी बोतल का जल ४-५ तोले की मात्रा में पिला देना चाहिए। इस प्रकार पीने की एक मात्रा देना देना ही पर्याप्त है।

यदि चूहा काट ले तो तुरन्त आसमानी बोतल के जल से काटे हुए स्थान को धोकर उसी रङ्ग की बोतल का तैल चुपड़ दें। अथवा धूप हो तो आसमानी काँच से काटे हुए स्थान पर प्रकाश डालें।

नशे की गर्मी का उपचार

यदि किसी नशीली वस्तु के सेवन से दिमाग में गर्मी चढने के कारण रोगी व्यर्थ बकवास करता हो या मूर्च्छाग्रस्त होगया हो अथवा उसे चक्कर आ रहे हों उसे तुरन्त ही आसमानी रङ्ग की बोतल के पानी का सेवन कराना चाहिए।

यदि वह मूर्छित हो तो उसके मुख पर इसी रङ्ग की बोतल का पानी डालें और आसमानी रङ्ग के कांच का प्रकाश उसके मुख और

मस्तक पर डालें तो शीघ्र लाभ हो सकता है। सिर पर इस रङ्ग के जल में भिगोयी हुई पट्टी रखें और कपाल-रन्ध्र पर बादाम के तैल की मालिश करें।

महिलाओं के विभिन्न रोग

महिलाओं में जननेन्द्रिय सम्बन्धी अनेक रोग होते हैं। परन्तु लज्जा के कारण वे उसे बताना नहीं चाहतीं, इसलिए रोग भीतर ही भीतर बढ़ता जाता है। उसका पता तब चलता है, जबकि वह कष्ट साध्य या असाध्य रूप धारण कर लेता है।

उनका उस अवस्था में उपचार करना भी एक जटिल समस्या होती है। चिकित्सक का कर्त्तव्य है कि वह उसके रोग का ठीक प्रकार से निदान करके ही उपचार आरम्भ करें। क्योंकि ठीक निदान न होने की स्थिति में दी जाने वाली दवा या तो लाभ ही नहीं करती, अथवा उल्टी हानि पहुँचा सकती है।

प्रदर रोग और उसके उपचार

इसमें योनि मार्ग से श्वेत, लाल, पीला या मटमैले रङ्ग का स्राव होता है। यह कभी अधिक और कभी कम हो जाता है। स्राव में कभी-कभी छिछड़ भी निकलते हैं। साथ ही मासिक धर्म का नियमित समय पर न होना, मासिक रुकने या ठीक प्रकार से न होने के कारण पेडू में दर्द, कमर में दर्द, सिर में दर्द आदि उपद्रव भी हो जाते हैं।

इसमें रोगिणी को क्रोध, शोक, चिन्ता से बचावें, गरिष्ठ भोजन न खाने दें, लालमिर्च, खटाई आदि के सेवन का निषेध करें और मैथुन आदि भी पूर्ण रूप से वर्जित कर दें।

श्वेत प्रदर, जिसमें मांस के धोवन के समान सफेद फेनयुक्त स्राव,

मटमैला स्राव तथा पेड़ू आदि का दर्द हो, उसमें हरी बोतल के पानी का डूश देना चाहिए तथा हरी बोतल के पानी का ही सेवन कराना चाहिए।

यदि लाल अथवा काले रङ्ग का गर्म रक्तस्राव वेग पूर्वक हो तो उस रोगिणी को आसमानी बोतल के २ तोले पानी में पीली बोतल का आधा तोला पानी मिला कर दिन में ५-६ बार देने से लाभ सम्भव है। योनि-मार्ग में हरी बोतल के पानी का डूश नित्य प्रति दिया जाय और उसी पानी में रुई भिगो कर फाया रखा जाय। मेहन-स्नान और कटि-स्नान देना भी हितकर है।

स्वल्प रजःस्राव या अल्पार्त्तव

यदि रज.स्राव अपने निश्चित अठ्ठाइसवें दिन न होकर महीने भर से अधिक समय ले जाय अथवा थोड़ा-थोड़ा रज ही निकल कर रह जाता हो, उसे स्वल्प रजःस्राव या अल्पार्त्तव कहते हैं। इस स्थिति में अनेक उपसर्ग दिखाई देते हैं, जैसे कि नलों में कठिनता, हल्का-सा उदरशूल, वमन, सन्धियों में दर्द, सिर-दर्द और पेडू में दर्द आदि। कभी-कभी कोष्ठबद्धता के साथ-साथ अजीर्ण, हल्का-सा तापमान और खुजली भी आने लगती है। रोग के बढ़ने पर त्वचा पीली पड़ जाती है और रोगिणी को मानसिक अवसाद का अनुभव होने लगता है।

इसमें रजःस्राव के दिनों में नित्यप्रति हरी बोतल के जल का एनिमा दें और इसी रङ्ग के तैल की पेडू पर १५-१५ मिनट दिन में दो बार मालिश करें। दवा के रूप में रोगिणी को दिन में चार बार पीली या नारंगी रङ्ग की बोतल का पानी दिया जा सकता है। अथवा हरी बोतल का जल ही सेवन करावें और हरे काँच का प्रकाश डालें। कुछ लोग लक्षण भेद के अनुसार बैंगनी रंग का प्रयोग भी उचित मानते हैं। रोगिणी को मेहन स्नान करावें और भीगी हुई मिट्टी की पट्टी पेडू पर बांधें अथवा गर्म-ठण्डे बैठक स्नान का निर्देश दें।

रजोरोध और उसके उपचार

रजोदर्शन या नियमित मासिक धर्म आरम्भ होने पर भी कभी-कभी रज:स्राव बन्द हो जाता है। परन्तु, यदि यह गर्भाधान के फलस्वरूप हो, तब तो स्वाभाविक है ही है, अन्यथा उपचार करना आवश्यक होता है। इसमें गर्भाशय और डिम्बाशय में तीव्र दर्द के साथ सिर-दर्द, नासा से रक्तस्राव, सिर में चक्कर आना, उदर में असह्य पीड़ा के छटपटाहट, हृदय में सुई चुभने जैसी वेदना, पाकस्थली में दर्द एवं शुष्क कास आदि लक्षण होते हैं।

यदि यह रोग जरायु आदि के अविकसित रहने से उत्पन्न हुआ हो तो रोगिणी को गर्म पानी के टब में कटि पर्यन्त पानी में तीन से आठ मिनट तक बैठावें और फिर तुरन्त २-३ मिनट तक ठण्डे पानी के टब में बैठाना चाहिए। यह क्रम तीन-चार बार दुहरावें।

पेड़ू पर नारङ्गी बोतल के तैल की मालिश करें और नारङ्गी रङ्ग का ही प्रकाश डालें। पीने के लिए भी पीली या नारङ्गी बोतल का जल ढाई-ढाई तोले की मात्रा में प्रतिदिन चार बार सेवन करावें। प्रातः मेहन स्नान और तीसरे पहर कटि स्नान का निर्देश दें। अथवा प्रातः काल पाँवों का गर्म स्नान करावें।

अतिरज और उसका उपचार

अतिरज तीन प्रकार का होता है--(१) मासिक धर्म के समय बहुत से रक्त का निकल जाना, (२) ऋतुस्राव का अधिक दिनों तक होते रहना, तथा (३) मास के चार सप्ताह में दो बार या दो से अधिक बार ऋतुस्राव हो जाना।

इसके प्रमुख लक्षण हैं-- अङ्गों का टूटना, जमुहाई आना, सिर में भारीपन या दर्द, सर्वाङ्गशूल, कमर और पीठ में वेदना, पाँवों के तलुओं का ठण्डे होना, जाड़ा लगना, जी का भारी रहना तथा भोजन के प्रति अरुचि हो जाना इत्यादि।

इसका सर्व प्रथम उपचार यह है कि रोगिणी को क्रोध, शोक, ईर्ष्या द्वेष, चिन्ता आदि उद्वेगों से दूर रखा जाय और उसे पूर्ण रूप से विश्राम करने दिया जाय। उसकी चारपाई का सिरहाना नीचा और पायताना कुछ ऊँचा रखना उचित है। हो तो उसे ५-७ दिन उपवास करावें और फलों के रस पर रखे।

अधिक रक्त जावे की दशा में रोगिणी को बर्फ टुकड़े चुसावें और पेड़ू पर बर्फ की थैली रखें। सूर्य तप्त आसमानी बोतल को बर्फ में दबाकर ठण्डी करें और उसका पानी रोगिणी को १-१ तोले की मात्रा में घन्टे-घन्टे भर पर सेवन करावें। यदि रक्तस्राव में तीव्रता न हो तो आसमानी बोतल का जल ढाई-ढाई तोले की मात्रा में दिन में चार बार दिया जा सकता है। इसी जल की पट्टी पेड़ू पर भी रखनी चाहिए।

ऐसी रोगिणी को दिन में दो बार मेहन स्नान और दो बार ही कटि स्नान दिया जाय। ठण्डे पानी का या आसमानी बोतल के पानी का डूश देने के बाद मेहन स्नान दिया जाय तो और भी हितकर है। रोग का अधिक वेग होने की स्थिति में रात्रि भर नीली बोतल के पानी में तर की हुई पट्टी अथवा मिट्टी की पट्टी रखनी उचित है।

अनुकल्प रज और उसके उपचार

इसकी उत्पत्ति रजोलोप अथवा अल्परज के कारण होती है। इसमें रक्त का निकास योनि द्वार से न होकर मल द्वार या नासा मार्ग से होता है। कभी-कभी श्लेष्मा के साथ भी रक्त निकलता देखते हैं, वह फुपफुसों से या पाकस्थली से निकला हुआ समझा जाता है। किसी-किसी रोगिणी को रक्त की वमन तक हो जाती है ' अथवा यह विकार कभी-कभी घोर लाल प्रदर का रूप भी धारण कर लेता है। मुख पर पीलापन, स्तन में वेदना, खाँसी में रक्त या हल्का तापमान भी हो सकता है।

यदि ऊर्ध्वभाग से रक्तस्राव हो तो उस अवस्था में प्रातःकाल गुनगुने

पानी से ५-७ मिनट तक कटि स्नान और लगभग दस बजे धूप स्नान दे सकते हैं।

प्रतिदिन चार बार आसमानी बोतल का पानी पिलाया जाय और पेडू पर हरे रङ्ग के पानी की पट्टी रखी जाय अथवा हरे रङ्ग का प्रकाश डालना भी हितकर रहता है।

गर्भाशय से रक्तस्राव और उसके उपचार

यह स्राव मासिक धर्म के दिनों से अतिरिक्त दिनों में होता है। मास में दो बार और किसी को ६-७ दिन के अन्तर से भी होता देखा गया है। वस्तुतः यह कोई पृथक् रोग नहीं, वरन् अनियमित रजःस्राव का ही एक भेद है।

इसमें रोगिणी को पूर्ण विश्राम देना आवश्यक होता है। स्राव न रुकने की अवस्था में पेडू पर बर्फ की थैली रखें और योनिमार्ग में ठन्डे पानी या आसमानी बोतल के जल की गद्दी रखनी चाहिए। अच्छा हो कि रोगिणी को आसमानी रङ्ग का पानी सेवन कराया जाय और प्रातः सायं मेहन स्नान दिया जाय।

कष्टार्त्तव और उसके उपचार

रजस्राव की गड़बड़ी से कमर में बहुत कष्टदायक दर्द होता है। बाँए डिम्बाशय में तीव्र दर्द के साथ अल्प रजःस्राव होना तथा तलपेट, मेरुदण्ड, कमर और समूचे शरीर में तीव्र वेदना होती है। इसमें सिर दर्द के साथ चक्कर आना, अग्नि-मांद्य, अरुचि, अजीर्ण, मिचली, वमन आदि उपसर्ग भी दिखाई देते हैं। शरीर में भारीपन, आलस्य, उत्साह-हीनता और बेचैनी रहती है। यह उपद्रव कभी मासिक धर्म के साथ होते हैं तो कभी पहिले या बाद में भी।

इसका उपचार मासिक धर्म प्रारम्भ होने से एक सप्ताह पहिले ही आरम्भ कर देना चाहिए। रोगिणी को फलों का रस ही अधिक सेवन कराया जाय और नित्य प्रति एनिमा दिया जाय।

यदि दर्द असह्य हो तो रोगिणी को वारी-वारी से गर्म और ठन्डे जल के टवों में वैठाना चाहिए। गर्म जल के टव में ३ मिनट और ठन्डे जल के टव में १ मिनट वैठाना पर्याप्त है।

नित्य प्रति चार वार नारङ्गी रङ्ग की वोतल का पानी ढाई-ढाई तोले की मात्रा में सेवन कराया जाय और पेड़ू पर इसी रङ्ग की वोतल के तैल की मालिश की जाय। अथवा नारङ्गी कांच से पेड़ू पर प्रकाश डालना भी कम उपयोगी नहीं है।

जव तक रोग न दूर हो जाय, तव तक रोगिणी को सुपाच्य आहार देना चाहिए। कब्ज उत्पन्न न होने देने वाले पदार्थ भोजन में सम्मिलित किये जाँय। पपीता आदि फल दें और पुरुष-संसर्ग से दूर रहने का निर्देश दें।

रजोनिवृत्ति के विकार और उपचार

यौवनावस्था का अन्तिम चरण समाप्त होने पर स्त्री का मासिक धर्म की स्वाभाविक रूप से निवृत्ति का समय आ जाता है। यह स्थिति लगभग ४०-४५ वर्ष की आयु मे आ जाती है। परन्तु किसी-किसी को ५० वर्ष की आयु तक मासिक धर्म चलता देखा जाता है।

मासिक-निवृत्ति की अवस्था आने पर रक्ताल्पता के साथ पाचन शक्ति क्षीण हो जाती है और शरीर में आलस्य उत्पन्न हो जाता है। मलावरोध के कारण अजीर्ण, अरुचि, वमन आदि विकारों के साथ जोड़ों में दर्द, छाती में दर्द, सिर-दर्द, सर्वाङ्ग दर्द आदि उपद्रव भी देखे जाते हैं, जिनके कारण वेचैनी, भ्रम लक्षण मूर्च्छा, मोह, आदि भी उत्पन्न हो जाते हैं।

किसी-किसी महिला को हिस्टीरिया, उन्माद, योनिशोथ आदि विकार हो जाते है और वह वृद्धावस्था का आगमन हुआ समझकर अनमनी रहने लगती है। इसीलिए उसकी मनोदशा में परिवर्तन आ जाता है।

कभी-कभी किसी दुःख या शोक के कारण भी शरीर कृश हो रक्ताल्पता के कारण मासिक धर्म नहीं होता वह स्थिति इसके अन्तर्गत नहीं होने के कारण उसका उपचार रजोनिरोध के समान करना चाहिए।

रोगिणी को पेट साफ करने के लिए नित्य एक सप्ताह तक एनिमा दिया जाय। आहार में फलों का रस, दूध, दलिया आदि हल्के सुपाच्य पदार्थ देने चाहिए। उसे स्वच्छ एवं खुली वायु में, अधिक भीड़-भाड़ से दूर एकान्त कमरे में रखा जाना हितकर रहेगा।

योनि शोथ आदि के लक्षण हों तो उसे हरी बोतल के जल का डुश एक-एक दिन छोड़कर देना चाहिए। दवा के रूप में हरी बोतल का ही जल दिन में चार बार देते रहें।

विभिन्न अङ्गों में दर्द होने की अवस्था में पीली और हरी बोतलों का पानी सवा-सवा तोले मिलाकर दिन में ऐसी चार मात्राएँ दें तथा पेडू पर हरे काँच का प्रकाश डालें। रोग-निवृत्ति के पश्चात् भी रोगिणी के आहार-विहार पर समुचित ध्यान रहना आवश्यक है।

गर्भावस्था के रोग और उनके उपचार

यदि गर्भावस्था में योनिशूल के लक्षण दिखाई दें तो यह स्थिति विचारणीय हो जाती है। यदि अधूरे दिनों में शूल हो तो गर्भ गिरने का खतरा उत्पन्न हो जाता है। ऐसी स्थिति उत्पन्न होने पर रोगिणी को हल्के हरे रङ्ग की दवा देनी चाहिए। अर्थात् उसे दो तोले पीली बोतल बोतल के जल में छः मासे गहरी नीली बोतल का जल मिलाकर दें और इसी प्रकार के जल का डूश भी दिलवावें।

रोगिणी को कब्ज न होने दें। सुपाच्य आहार-फल, दूध आदि अधिक दें। पेट साफ होता रहे, इसके लिए नित्य प्रति एनिमा का प्रयोग करते रहें। अथवा जब आवश्यकता हो, तब एनिमा दें।

यदि गर्भश्राव की स्थिति हो, अर्थात् गर्भवती के योनिमार्ग से रक्त बहने लगे तो रोगिणी को आसमानी बोतल का पानी सवा-सवा तोले

की मात्रा में एक-एक घन्टे के अन्तर से दें। तथा पेड़ू पर हरे जल में भिगोयी हुई मोटी पट्टी पेड़ू पर रखें या हरे काँच का प्रकाश दें।

यदि गर्भस्थिति को चार या उससे अधिक मास हो गए हों और उस स्थिति में रक्त-प्रवाह (ब्लीडिंग) चालू हो जाय तो गर्भस्थ बालक के गिर जाने का भय रहता है। इसमें गहरे नीले रङ्ग की बोतल का २-२ तोले पानी दो-दो घन्टे के अन्तर से दें। यदि स्थिति गम्भीर हो तो १-१ तोला नीले रङ्ग का यह पानी एक-एक घन्टे के अन्तर से देना चाहिए। पेड़ू पर हरे जल में भिगोयी हुई पट्टी रखें।

गर्भ शोष में गर्भस्थ भ्रूण सूखने लगता है, इसलिए उसका ठीक रहना कठिन होता है। उसके कारण गर्भवती को भी रक्ताल्पता आदि विकार घेर लेते हैं। यदि ऐसी स्थिति हो तो पीली बोतल का जल एक भाग और गहरी नीली बोयल का जल, जल तीन भाग मिलाकर रोगिणी को औषधि के रूप में दें और उदर पर नीले काँच का ही प्रकाश आधा घन्टे तक आवश्यकतानुसार डालें।

यदि गर्भ स्थिति हो जाने पर भी पेट में बालक का होना प्रतीत हो अर्थात् गर्भ लोप हो जाय तो गर्भवती को पीली और बोतलों के जल को मिलाकर उससे डूश देना चाहिए तथा उदर पर नीले रङ्ग का प्रकाश डालना चाहिए।

यदि गर्भ हो ही नहीं और ऐसा प्रतीत हो कि गर्भ है तो वह स्थिति मिथ्या गर्भ की कही जाती है। उस अवस्था में रोगिणी को नारङ्गी बोतल का जल देना चाहिए।

यदि गर्भावस्था में गर्भवती को उबकाई, वमन, कलेजे में भारीपन या दाह की प्रतीति हो तो उसे आसमानी बोतल का पानी सेवन कराने से लाभ हो सकता है।

यदि गर्भिणी को ज्वर हो जाय तो भी उसे आसमानी बोतल का

जल दें । खाँसी हो तो नीले रङ्ग की वोतल का और सिर दर्द भी हो तो नारंगी रंग की बोतल के पानी की १-२ खुराक देनी चाहिए।

बालक उत्पन्न हो जाने के बाद कुछ महिलाओं को विभिन्न विकार उत्पन्न हो जाते हैं, जैसे ज्वर, उदर-शूल, खाँसी, रक्त का न रुकना, स्तनों में दर्द, मलावरोध इत्यादि। उनमें प्रायः सामान्य स्थिति में उत्पन्न होने वाले उपद्रवों के समान उपचार किये जाते हैं। फिर भी प्रसंगवश संक्षेप में प्रकाश डाला जाता है।

यदि प्रसव होने के पश्चात् ज्वर हो जाय तो उसे नारंगी बोतल का जल देना उचित है। भोजन में दूध का सेवन ही उचित होता है।

प्रसूतावस्था के बाद स्तनों में दर्द होने की अवस्था में उसे नीली बोतल का पानी औषधि रूप में सेवन करावें और स्तनों पर हरे रंग के काँच से प्रकाश डाले।

यदि प्रसूता को सिर-दर्द एवं सर्वांग दर्द दर्द आदि उपद्रवों की प्रतीति हो तो उसे नारंगी बोतल का पानी प्रयोग में लाना चाहिए।

यदि पेट में दर्द हो और दस्त हो जाने पर भी न रुके तो उसे नीले रंग की बोतल का सेवन करने से लाभ होना सम्भव है।

यदि जुकाम, खाँसी आदि का प्रकोप हुआ हो तो उसे हरी बोतल का जल देने से लाभ होता है। साथ ही सिर-दर्द भी हो तो सिर पर नीला प्रकाश डालना उचित है।

पुरुषों के विभिन्न रोग

पुरुषों को जननेन्द्रिय सम्बन्धी अनेक रोग हो जाते हैं, उनमें शुक्र-दोष, शुक्रक्षय, निर्बलता (प्रसंग में असमर्थता), क्लैव्य, प्रमेह, स्वप्नदोष आदि सम्मिलित हैं। यदि इनके प्रति असावधानी बरती जाती है, तो फिर इनका काबू में करना कठिन होता है।

शुक्रक्षय आदि की चिकित्सा

इन सभी उपद्रवों में आसमनी रंग की बोतल का पानी अधिक उपयोगी रहता है। शुक्रक्षय या शुक्र-स्राव आदि में रीढ़ की अस्थि पर ८-१० मिनट तक आसमानी रंग की बोतल के तैल की मालिश की जानी चाहिए। इसमें आसमानी रंग की बोतल का पानी भी दिन में दो वार देना उचित होगा। स्वप्नदोष या स्वप्न प्रमेह का उपचार भी शुक्रक्षय के उपचार के समान ही करना चाहिए। अथवा नीली बोतल का पानी पिलाया जाय।

प्रसङ्ग में निर्बलता होने पर नारङ्गी रङ्ग की बोतल का पानी देना हितकर है, क्योंकि उससे ऊष्मा बढ़कर ताकत आने लगती है। यदि क्लैव्य (नपुंसकता) हो तो गहरे हरे रङ्ग की बोतल का जल दिया जाय। उपस्थ पर लाल बोतल के तैल की मालिश करें अथवा लाल प्रकाश डालें। यदि इन रोगों के साथ कब्ज भी रहता हो तो पीली बोतल का पानी देना हितकर होता है। एनिमा का भी प्रयोग किया जाय। कटि स्नान या मेहन स्नान करावें। रात्रि के समय वस्ति की ढकी हुई लेपेट का निर्देश दें।

अन्यान्य शुक्र दोषों में निरन्तर एक सप्ताह पर्यन्त हरी बोतल के पानी में पीली बोतल का मिश्रण सेवन कराना चाहिए और इसी का एनिमा भी नित्य प्रति देना उचित होगा।

सुजाक और उसका उपचार

इसे मूत्रकृच्छ्र भी कहते हैं। आयुर्वेद ने इन्हें अनेक प्रकार का माना है। इसमें थोड़ा-थोड़ा मूत्र बार-बार उतरता है तथा अण्डसन्धि, मूत्राशय और उपस्थ में तीव्र वेदना होती है। यह लक्षण वात-प्रधान सुजाक के हैं। पित्त प्रधान में जो मूत्र बार-बार, किन्तु बड़े वेग से उतरती हैं, वह ललोई लिये हुए एवं दाहयुक्त होता है। कफजन्य में मूत्राशय और उपस्थ में गुरुत्व (भारीपन), शोथ एवं मूत्र चिकना उतरता

है। इसके अतिरिक्त इसके और भी अनेक प्रकार हैं, जिसमें मूत्र रुकना, शोथ, जलन आदि होना प्रमुख लक्षण होते हैं। रोग बढ़ जाने पर मूत्र के स्थान पर दूधिया स्राव अथवा पीव युक्त मूत्र उतरता है।

रोगी को खान-पान की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। स्त्री-पुरुष-संसर्ग इसमें सर्वथा वर्जित है। सुपाच्य भोजन के साथ फल का आहार अधिक किया जाय। नीली बोतल में सन्दल (चन्दन का तैल) भर कर सिद्ध करें और उसे १५-२० बूँद की मात्रा में बताशे के साथ रोगी को सेवन करावें। उपस्थ पर नीले ही काँच का प्रकाश डालें।

यह रोग स्त्रियों को भी हो जाता है, इसलिए उनको भी यही उपचार दें। अथवा नीली बोतल का पानी दिन में ३-४ बार पिलावें और जननेन्द्रिय में ऐसी ही बोतल में सिद्ध किया हुआ तैल लगावें। भीगी हुई मिट्टी की पट्टी रखें और मेहन स्नान का प्रयोग करें।

उपदंश और उसका उपचार

इस रोग को गर्मी या फिरङ्ग रोग भी कहते हैं। यह इतना दुष्ट रोग है कि बहुत प्रयत्न करने पर भी जाने का नाम नहीं लेता। यह स्त्री और पुरुष दोनों को ही होता है। आयुर्वेद ने इसे वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज और रक्तज के भेद मे पाँच प्रकार का माना है। इसके लक्षण जननेन्द्रिय पर फोड़े-से हो जाना, शोथ, जलन एवं खुजली आदि के साथ पीव निकलना भी है। प्रारम्भ में पीव नहीं भी निकलती और न किसी प्रकार की वेदना ही होती है। बाद में फुंसियाँ उत्पन्न होकर फोड़े का रूप धारण कर घाव बन जाती हैं। दो-तीन महीने बाद उसका रूप भयंकर हो जाता और पीव के साथ बहुत कष्ट होता है।

इसमें हरी बोतल का पानी पिलाना चाहिए तथा व्रणों और क्षतों पर हरी बोतल का ही तैल लगाना उचित है। अथवा प्रभावित स्थान पर हरे काँच का प्रकाश भी डाला जा सकता है।

उपदंश के रोगी को कम से कम तीन दिन उपवास और एनिमा का प्रयोग कराया जाय ; फिर फलों के रस पर एक सप्ताह तक रखा जाय । गर्म-ठण्डा बैठक स्नान भी उपयोगी है ।

अण्डवृद्धि रोग और उसके उपचार

अण्डकोषों का बढ़ जाना ही अण्डवृद्धि रोग कहलाता है । माधव-निदान ने वातज, पित्तज आदि के भेद से इसे सात प्रकार का माना है। इन सबका कारण बताते हुए कहा गया है कि जब अधोगमनशील एवं शोथ-शूल उत्पन्न करने वाला कुपित हुआ वायु कुक्षि में संचार करता है और अण्डकोष एवं जंघा-सन्धि में पहुंचकर कोशवाहिनी धमनी को दूषित कर देता है, उससे अण्डवृद्धि रोग उत्पन्न हो जाता है ।

हाथ के स्पर्श से जो अण्डकोश मशक के समान भरा प्रतीत हो तथा अकारण ही दुखने लगे वह वातज व पके हुए गूलर के समान एवं काले रङ्ग के व्रणों से व्याप्त तथा दाह, ऊष्मा और परिपाक युक्त पित्तज होती है । कफज वृद्धि शीतल, भारी, खाजयुक्त, पीड़ायुक्त और कठिन समझनी चाहिए । एक मूत्रज अण्डवृद्धि भी होती है, जिसमें वृषण जल से भरे हुए और चलने में शब्द करते प्रतीत होते हैं ।

इसमें रोगी को ऐसा भोजन करना चाहिए जो कि सुपाच्य और हल्का हो । फलों का सेवन अधिक करें । कब्ज करने वाला कोई अन्न या फल नहीं लेना चाहिए । फलों में पपीता का सेवन अधिक हितकर रहता है ।

पीली बोतल का पानी नित्य प्रति चार बार दें । एक मात्रा प्रातः-काल और एक रात्रि में शयन समय तथा दो मात्राएँ दोनों समय भोजन के बाद देनी चाहिए । बढ़े हुए वृषण (अंडकोश) पर प्रथम लाल रङ्ग का प्रकाश आधे से एक घण्टे तक डालें और बाद में नीला प्रकाश एक से दो घण्टे तक डालना चाहिए । अथवा बैंगनी प्रकाश भी डाल सकते हैं । फिर रोगी को अण्डकोशों पर लँगोट कस लेना चाहिए । इस रोग

में गर्म-ठण्डा बैठक स्थान और वस्ति की ढकी हुई लपेट का प्रयोग भी कर सकते हैं।

बालकों के रोगों का उपचार

जन्म के पश्चात् माता के किसी रोग-दोष के कारण अथवा गर्मी, सर्दी आदि लगने या अन्य कारणों से अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। उस अवस्था में प्रथम तो उसकी माता को ही ऐसा उपचार दिया जाता है, जिससे बालक का उत्पन्न हुआ रोग दूर हो सके। यदि उससे काम न चले तो सीधे उसे ही औषधादि दी जाती है।

परन्तु, बालक के ज्वर, खाँसी, दस्त आदि रोग तो प्रकट लक्षणों से पहिचान लिये जाते हैं, जबकि दर्द आदि रोगों के स्थान का पता नहीं लग पाता। उस स्थिति में बालक अपने शरीर के जिस अङ्ग पर हाथ लगाता हुआ रोता हो, उस अङ्ग को ही विकार-ग्रस्त समझना चाहिए। उनके कुछ रोगों पर यहाँ लिखा जाता है—

बालक का पेट-दर्द

इसमें पेट कड़ा रहता है, रोग बढ़ने पर अधिक फूल जाता है। ऐसी स्थिति में नारङ्गी रंग की बोतल का जल कुछ बूंद माता के दूध में मिलाकर दिन में तीन-चार बार देना चाहिए। दर्द असह्य हो तो इसी रंग का प्रकाश ३ से ५ मिनट तक पेट पर डाला जाय।

यदि बालक बड़ा हो, अन्न खाने लगा हो, तो उसे अन्न न देकर पपीता आदि फलों का सेवन कराया जाय। आवश्यक होने पर गाय का दूध समान भाग पानी मिलाकर और गर्म करके देना चाहिए। नारंगी रंग के पानी की मात्रा १ चम्मच से २ चम्मच तक दी जा सकती है।

बालक का सिर-दर्द

इसमें अबोध बालक अपने दुःख को नहीं कह पाता, परन्तु नेत्र बन्द करके सिसकता है। ऐसी स्थिति में सिर को हल्के हाथ से दबाया जाय तो उसे कुछ आराम मालुम होता है और उसका सिसकना कम हो जाता है।

यदि ऐसा हो तो उसके सिर पर बादाम रोगन की मालिश की जाय अथवा हरे रंग का प्रकाश ५ मिनट से १५ मिनट तक दिन में दो बार डाला जाय। पीने के लिए भी हरी बोतल का पानी ही दिन में चार बार तक देना उचित है।

बालक के हृदय में वेदना

जब बालक का श्वास वेग से चलता हो, उसे बेचैनी प्रतीत होत हो, मुट्ठियाँ बाँध कर हाथों को मोड़ लेता हो तथा दाँती मींचता हुआ जीभ और ओष्ठों को चलाता हो, तब समझना चाहिए कि उसे हृदय सम्बन्धी कोई रोग है।

ऐसी स्थिति में उसे नारंगी बोतल का जल आयु और बल के अनुकूल मात्रा में देना चाहिए। उसके हृदय और मुख पर गहरा नीला प्रकाश डालना भी हितकर है।

बालक को अपचन और पतले दस्त आदि

यदि उसे अपचन हो, शरीर के भारीपन के कारण जमुहाई लेता हो, पतले दस्त हो रहे हों और दस्तों में सड़ान या दुर्गन्ध की अधिकता हो तो दूध पिलाने वाली माता को अन्न आदि का सेवन छोड़ कर फलों का रस और दूध का सेवन करना चाहिए और गहरी नीली दवा की ढाई-ढाई तोले की मात्रा स्वयं दिन में चार बार पीनी चाहिए।

यदि बालक ने माता का दूध पीना छोड़ दिया हो और अन्न खाता हो तो उसकी आयु के अनुसार उसे नीली बोतल का ही जल दिया जाय। अन्न करके उसे भी फलों का देना उचित है।

दाँत निकलते समय के विकार

दन्तोद्गम काल में बालकों को हरे-पीले दस्त और वमन आदि के उपद्रव होने लगते हैं। उस स्थिति में भी माता को स्वयं अपना खान-पान, विहार आदि की ओर सतर्कता रखनी और नीली बोतल का जल ही सेवन करना चाहिए। यदि स्वयं को दवा-सेवन से कार्य न चले तो बालक को भी कुछ बूँद इसी नीले जल की दी जाँय।

बालकों का कृमि रोग

यदि बालकों को कृमि-रोग हो जाता है, तो भी उन्हें बड़ा कष्ट होता है। पेट में उत्पन्न हुए कीड़े मलद्वार तक को चोंटते हैं, इस कारण वह रोने लगता है। यदि बालक दूध पीता हो तो माता को ३ तीन दिन तक फलों के रस सेवन पर या फलाहार पर रहना चाहिए। साथ ही हरी बोतल के पानी का सेवन और इसी से एनिमा लेना चाहिए।

यदि बालक बड़ा हो तो उसे हरी बोतल के जल का एनिमा दिया जाय। अथवा नीम की पत्तियों को जल के साथ उबाल कर छानें और उस पानी को हरी बोतल में भर कर २-३ घण्टे धूप में रखें। इस पानी का एनिमा पेट के कीड़ों को नष्ट करके निकालने में बहुत हितकर रहता है।

आँख दुखने आना

यदि दूध पीते बालक की आंख दुखने आ जाय तो उसे बहुत बेचैनी रहती है। ऐसी स्थिति में उसकी माता को अन्नाहार का त्याग कर केवल फल और शाक-सब्जी का सेवन करना चाहिए। दूध भी ले सकती है।

बालक की आँखों को गहरी नीली बोतल के पानी से धोया जाय और वैसा ही पानी पिलाया जाय।

बालक के मल-मूत्र का अवरोध

इस स्थिति में बालक को बड़ी बेचैनी रहती है और वह माता के

स्तनों को काटने लगता है, पेट कड़ा हो जाता है और उस पर अफरा दिखाई देता है। इस अवस्था में उसकी माता को अपना आहार-विहार ठीक करना चाहिए और बालक के पूरे शरीर पर पीला प्रकाश डालना चाहिए। पीने के लिए नारङ्गी रङ्ग की बोतल का जल उचित मात्रा में उसे अथवा उसकी माता को दिया जाय। पेट और पीठ पर गर्म-ठण्डा सेंक भी इसी रङ्ग के पानी से करना उचित होगा।

बालक का सूखा रोग

इसमें समूचा शरीर दिनों दिन सूखना जाता है। विशेष कर हाथ-पांवों में अधिक पतलापन आ जाता है। इस स्थिति में मुख और हृदय पर एक घण्टा नीला प्रकाश और आध घण्टा पीला प्रकाश नित्यप्रति डालें और समूचे शरीर पर नीली गहरी बोतल का तैल मलें। पीने के लिए तीन भाग नीली बोतल का और एक भाग पीली बोतल का जल मिला कर दें अथवा गहरी हरी बोतल का पानी सेवन करावें।

बालकों के अन्यान्य रोग

यदि बालक बहुत रोता हो और कोई कारण समझ में न आवे तो उसके मुख पर ३० मिनट से एक घण्टे तक गहरा नीला प्रकाश डालें और उसे पीली या नीली बोतल का जल सेवन करावें।

यदि उसके मुख में छाले होगए हों तो नीली बोतल के जल की फुरैरी उन छालों पर लगावें। अथवा इसी जल से उसे कुल्ले करा सकें, तो करावें। यदि बालक दूध पटकता हो तो भी नीली बोतल का पानी देना ठीक रहता है।

यदि बालक के मुख से लार अधिक निकलती हो तो उसे पीली बोतल का जल सेवन करावें और उसके मुख पर गहरे नीले कांच का प्रकाश आध घण्टे तक डालें।

यदि मुख में झाग आते हों तो भी उसके मुख पर आध घण्टा से

एक घण्टा तक नीले काँच का प्रकाश डालना उचित है। साथ ही नीली या हरी बोतल का जल सेवन कराया जाय।

यदि सोता हुआ बालक पेशाब कर लेता हो तो उसके पेड़ू और मूत्राशय पर गहरा नीला प्रकाश डाला जाय तथा हरी बोतल का पानी सेवन कराया जाय।

इस प्रकार बालकों के विभिन्न रोगों के उपचार में उनको दिये जाने वाले जल आदि की मात्रा उनकी आयु और बल आदि के अनुपात से निश्चित करनी चाहिए।

जानने योग्य आवश्यक तथ्य

सूर्य-किरणों में प्राकृतिक खनिज लवण आदि के गुणों का समावेश रहता है। कुछ विद्वानों के अनुसार किरणों के रङ्ग विशेष ही अपनी शक्ति से स्वगुणात्मक खनिज धातुओं और लवणों आदि का स्वरूप निर्मित करते हैं। यहाँ बताना आवश्यक है कि किस द्रव्य में किस रङ्ग के गुणों का समावेश रहता है—

रजत अर्थात् चाँदी में वे सभी गुण होते हैं, जो, सूर्य की बैंगनी रङ्ग की किरण में होते हैं। जब कि स्वर्ण में नारङ्गी रङ्ग की किरणों के गुणों का समावेश रहता है।

शीशा में हरे रङ्ग की किरणों के, लोहे में लाल रङ्ग के और वंग में आसमानी रङ्ग की किरणों के गुण होते हैं। पारद में पीले रङ्ग के और ताम्र में गहरे नीले रङ्ग के गुण पाये जाते हैं।

वैज्ञानिकों की मान्यता के अनुसार यदि कोई रोगी बैंगनी रङ्ग का उपचार लेता है तो वह यदि चाँदी युक्त किसी औषधि का भी सेवन करे तो उसे अधिक लाभ हो सकता है। इसके लिए रजत भस्म १-२ रत्ती प्रात-साय मधु-योग से ली जा सकती है।

नारङ्गी रङ्ग का उपचार लेने वाले रोगी को स्वर्ण भस्म या उससे निर्मित योग लेना हितकर रह सकता है। इसकी मात्रा आधी से एक रत्ती तक हो सकती है। इसे भी शहद के साथ दे सकते हैं।

यदि कोई रोगी हरे रङ्ग का सूर्य-उपचार करा रहा हो तो, उसे शीशा भस्म और लाल रङ्ग का उपचार कराने वाले को लौह-भस्म का सेवन करना चाहिए। ऐसा व्यक्ति बथुआ आदि लौह-युक्त हरे शाक-सब्जियों के सेवन द्वारा भी अपेक्षित लाभ उठा सकता है।

आसमानी बोतल का जल सेवन करने या आसमानी प्रकाश ग्रहण करने वाले रोगी को वंग-भस्म का सेवन करना भी हितकर होगा। इसे प्रातः-सायं शहद के साथ ही २ रत्ती की मात्रा में लेना चाहिए।

जो लोग पीले रङ्ग का सूर्योपचार ले रहे हों, उन्हें पारद के योग सेवन करने चाहिए। यह योग रोगानुसार विभिन्न विधियों से तैयार किये जाते और अपेक्षित अनुपान द्रव्य के साथ लिये जाते हैं।

यदि किसी रोगी को गहरे नीले रङ्ग की सूर्य-किरणों का उपचार लेना आवश्यक हो, तो वह ताम्र भस्म के सेवन से भी अधिक लाभ उठा सकते हैं। यह भी रोगानुसार अनुपानादि के साथ ली जा सकती है।

परन्तु, ध्यान रखिये कि औषधि रूप में ऐसे द्रव्यों का सेवन कदापि न कीजिए, जिनका गुण अपेक्षित रश्मि-रङ्ग से विपरीत हो। जैसे कि आप आसमानी रङ्ग का उपचार ले रहे हों, तो उस अवस्था में लौह भस्म का सेवन कदापि नहीं करना चाहिए।

अत्यन्त उपयोगी प्रका[illegible]

१—योग चिकित्सा २ खण्ड	...	१५०
२—प्राणायाम के असाधारण प्रयोग	...	[illegible]५
३—योगासन से रोग निवारण	...	[illegible]५
४—सूर्य नमस्कार से रोग निवारण	...	३[illegible]०
५—अष्टाङ्ग योग सिद्धि	...	५)७०
६—अष्टाङ्ग योग रहस्य	...	५)७०
७—हठयोग प्रदीपिका	...	४)
८—घेरंड संहिता	...	३)७५
९—शिव संहिता	...	३)२५
१०—गोरक्ष संहिता	...	३)
११—बृहद् शिव स्वरोदय	...	३'५
१२—सौ वर्ष तक स्वस्थ रहें	...	३)
१३—हिप्नोटिज्म (सम्मोहन विज्ञान)	...	५)५०
१४—मरने के बाद	...	४)५०
१५—सरल प्राकृतिक चिकित्सा विधान	...	५)
१६—सरल घरेलू चिकित्सा	...	४)५०
१७—भोजन से स्वास्थ्य	...	४)५०
१८—ब्रह्मचर्य की प्रचण्ड शक्ति	...	३)
१९—शक्ति सम्राट कैसे बनें ?	...	३)५०
२०—दृष्टान्त सरित सागर	...	८)५०
२१—चिन्तायें कैसे दूर हों ?	...	३)५०
२२—देवता कैसे बनें ?	...	३)५०
२३—सुन्दर कैसे बनें ?	...	३)५०
२४—धनवान कैसे बनें ?	...	४)५०
२५—चाणक्य नीति	...	२)२५
२६—भर्तृहरि शतक त्रय	...	१)६५

प्रकाशकः—संस्कृति संस्थान, ख्वाजा कुतुब, वेदनगर,
बरेली-२४३००१ (उ० प्र०)